आनन्द-गंगा

भगवान श्री रजनीश

एक की दौड़ का केन्द्र वासना होती है, दूसरे की दौड़ का केन्द्र करुणा हो जाती है। आनन्द करुणा को उत्पन्न करता है और जितना आनन्द भीतर फलित होता है, उतनी आनन्द की सुगन्ध चारों तरफ फैलने लगती है। आनन्द की सुगन्ध का नाम प्रेम है। **जो व्यक्ति भीतर आनन्दित होता है, उसका सारा आचरण प्रेम से भर जाता है।** व्यक्ति अन्तर में आनन्द को उपलब्ध हो, तो आचरण में प्रेम प्रकट होने लगता है। आनन्द का दिया जलता है, तो प्रेम की किरणें सारे जगत् में फैलने लगती हैं।

प्रकाशक : ओम रजनीश ध्यान
एवं प्रकाशन-केन्द्र
३१, भगवान भुवन
इसरायल मोहल्ला
मसजिद बन्दर रोड
बम्बई-400 009

प्रतियाँ : 5,000

मूल्य : पेपरबैक रु० 5.00
राज-संस्करण रु० 6.00

मुद्रक : भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

ANAND-GANGA : BHAGWAN SRI RAJNEESH

PUBLISHED BY

AUM RAJNEESH MEDITATION & PUBLICATION CENTRE,
31, ISRAIL MOHALLA, MASJID BUNDER RD. BOMBAY-400 009

भगवान श्री रजनीश

सम्पादन :
स्वामी नारायण भारती

संकलन :
स्वामी कृष्ण वेदान्त

ओम रजनीश ध्यान-केन्द्र प्रकाशन
बम्बई

अन्तर्वस्तु

●

१ : जिज्ञासा का लोक

एक अन्धेरी रात में एक युवक ने एक साधु से पूछा कि क्या आप मुझे सहारा न देंगे अपने गन्तव्य पर पहुँचने में ? गुरु ने एक दिया जलाया और उसे साथ लेकर चला। और जब वे आश्रम का द्वार पार कर चुके, तो उस साधु ने कहा, अब मैं अलग हो जाता हूँ। कोई किसी का साथ नहीं कर सकता है और अच्छा है कि मैं इसके पहले बिदा हो जाऊँ कि तुम साथ के आदी हो जाओ। इतना कह कर उस घनी रात में, अन्धेरी रात में, उसने उसके हाथ के दिये को भी फूँक कर बुझा दिया। वह युवक बोला, यह क्या पागलपन हुआ ? अभी तो आश्रम के हम बाहर भी नहीं निकल पाये, साथ भी छोड़ दिया और दिया भी बुझा दिया। उस साधु ने कहा, दूसरों के जलाये हुए दिये का कोई मूल्य नहीं है। अपना ही दिया हो तो अन्धेरे में काम देता है, किसी दूसरे के दिये काम नहीं देते। खुद के भीतर से प्रकाश निकले, तो रास्ता प्रकाशित होता है, और किसी तरह रास्ता प्रकाशित नहीं होता।

तो मैं निरन्तर सोचता हूँ, लोग सोचते होंगे कि मैं आपके हाथ में कोई दिया दे दूँगा, जिससे आपका रास्ता प्रकाशित हो जायेगा, तो आप गलती में हैं। आपके हाथ में दिया होगा, तो मैं उसे बड़ी निर्ममता से, फूँक कर बुझा दे सकता हूँ। मेरी मंशा और मेरा इरादा यही है कि आपके हाथ में, अगर कोई दूसरे का दिया हुआ प्रकाश हो, तो मैं उसे फूँक दूँ, उसे बुझा दूँ। आप अन्धेरे में अकेले छूट जायँ, कोई आपका संगी-साथी हो, तो उसे भी छीन लूँ। और तभी, जब आपके पास

दूसरों का जलाया हुआ प्रकाश न रह जाय और दूसरों का साथ न रह जाय, तब आप जिस रास्ते पर चलते हैं, उस रास्ते पर परमात्मा आपके साथ हो जाता है और आपकी आत्मा के दिये के जलने की संभावना हो जाती है।

सारी जमीन पर ऐसा हुआ है, सत्य की तो बहुत खोज है, परमात्मा की बहुत चर्चा है। लेकिन—लेकिन ये सारे कमजोर लोग कर रहे हैं, ये साथ छोड़ने को राजी नही हैं, न दिया बुझाने को राजी हैं। अन्धेरे में जो अकेले चलने का साहस करता है, बिना प्रकाश के, उसके भीतर साहस का प्रकाश पैदा होना शुरू हो जाता है और जो सहारा खोजता है, वह निरंतर कमजोर होता चला जाता है। भगवान को आप सहारा न समझें। और जो लोग भगवान को सहारा समझते होंगे वे गलती में हैं, उन्हें भगवान का सहारा उपलब्ध नहीं हो सकेगा।

कमजोरों के लिए जगत में कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। और **जो शक्तिहीन हैं, और जिनमें साहस की कमी है, धर्म उनका रास्ता नहीं है**। दीखता उल्टा है। दीखता यह है कि जितने कमजोर हैं, जितने साहसहीन हैं, वे सभी धार्मिक होते हुए दिखायी पड़ते हैं। कमजोरों को, साहसहीनों को, जिनकी मृत्यु करीब आ रही हो, उनको घबराहट में, भय में धर्म ही मार्ग मालूम होता है। इसलिए धर्म के आस-पास कमजोर और साहसहीन लोग इकट्ठे हो जाते हैं, जब कि बात उल्टी है। धर्म तो उनके लिए है, जिनके भीतर साहस हो, जिनके भीतर शक्ति हो, जिनके भीतर अदम्य हिम्मत हो और जो खुद अन्धेरे में अकेले, बिना प्रकाश के चलने का दुस्साहस करते हों।

यह मैं प्राथमिक रूप से आपसे कहूँ—दुनिया में यही वजह है कि जब से कमजोरों ने धर्म को चुना है तब से धर्म कमजोर हो गया है। और अब तो सारी दुनिया में कमजोर लोग ही धार्मिक हैं। जिनमें थोड़ी सी भी हिम्मत है, वे धार्मिक नहीं हैं। जिनमें थोड़ा-सा साहस है, वे

नास्तिक हैं और जिनमें साहस की कमी है, वे सब आस्तिक हैं। भगवान की तरफ सारे कमजोर लोग इकट्ठे हो गये हैं, इसलिए दुनिया में से धर्म नष्ट होता चला जाता है। इन कमजोरों को भगवान तो बचा ही नहीं सकता, ये कमजोर भगवान को कैसे बचायेंगे? कमजोरों की कोई सुरक्षा नहीं है और कमजोर लोग किसी की रक्षा कैसे करेंगे?

सारी दुनिया में मनुष्य के इतिहास के इन दिनों में, इन क्षणों में, जो धर्म का अचानक ह्रास और पतन हुआ है, उसका बुनियादी कारण यही है। तो मैं आपसे कहूँ, अगर आप में साहस हो, तो ही धर्म के रास्ते पर चलने का मार्ग खुलता है। न हो, तो दुनिया में बहुत रास्ते हैं। धर्म आप में भी नहीं हो सकता। जो आदमी भय के कारण, भयभीत होकर, धर्म की तरफ आता हो, वह गलत आ रहा है।

लेकिन सारे धर्म-पुरोहित तो आपको भय देते हैं—नरक का भय, स्वर्ग का प्रलोभन, पाप-पुण्य का भय और प्रलोभन, और घबराहट पैदा करते हैं। वे घबराहट के द्वारा, आप में धर्म का प्रेम पैदा करना चाहते हैं। और यह आपको पता है, भय से कभी प्रेम पैदा नहीं होता? और जो प्रेम भय से पैदा होता है, वह एकदम झूठा होता है, उसका कोई मूल्य नहीं होता। आप भगवान से डरते हैं, तो आप नास्तिक होंगे, आस्तिक नहीं हो सकते।

कुछ लोग कहते हैं, जो भगवान से डरे, वह आस्तिक है—गॉड फियरिंग, जो ईश्वर से डरता हो, ईश्वर भी हो, वह आस्तिक है। यह बिलकुल झूठी बात है। ईश्वर से डरने वाला कभी आस्तिक नहीं हो सकता। क्योंकि डरने से कभी प्रेम पैदा नहीं होता। और जिससे हम भय खाते हैं, उसको बहुत प्राणों के प्राण में घृणा करते हैं। यह तो सम्भव ही नहीं है। भय के साथ भीतर घृणा छिपी होती है। जो लोग भगवान से भयभीत हैं, वे भगवान के शत्रु हैं और उनके मन में भगवान के प्रति घृणा होगी।

तो मैं आपसे कहूँ, ईश्वर से भय मत खाना। ईश्वर से भय खाने का कोई भी कारण नहीं है। इस सारे जगत में अकेला ईश्वर ही है, जिससे भय खाने का कोई कारण नहीं। और सारी चीजें भय खाने की हो सकती हैं। लेकिन हुआ उल्टा है। और मैं बड़े-बड़े धार्मिकों को यह कहते सुनता हूँ कि ईश्वर का भय खाओ। और ईश्वर का भय खाने से पुण्य पैदा होगा। और ईश्वर के भय खाने से सच्चरित्रता पैदा होगी। ये निहायत झूठी बातें हैं। भय से कहीं सदाचार पैदा हुआ है? जैसे हमने रास्ते पर पुलिस वाले खड़े कर रखे हैं, वैसे हमने परलोक में भगवान को खड़ा कर रखा है। वह एक बड़े पुलिस वाले की हैसियत से है, एक बड़े कांस्टेबल की हैसियत से है। भगवान को, जिन्होंने कांस्टेबल बना दिया है, उन लोगों ने धर्म को बहुत नुकसान पहुँचाया है। भगवान के प्रति भय से कोई विकसित नहीं होता। भगवान के प्रति तो अभय चाहिए और अभय का अर्थ क्या होगा?

अभय का अर्थ होगा, जो लोग श्रद्धा करते हैं, वे लोग भय के कारण श्रद्धा करते हैं। इसलिए श्रद्धा को मैं धर्म की आधारभूत शर्त नहीं मानता। आपने सुना होगा कि जिसको धार्मिक होना है, उसे श्रद्धालु होना चाहिए। गांधीजी से एक बहुत बड़े व्यक्ति ने जाकर पूछा कि मैं परमात्मा को जानना चाहता हूँ तो क्या करूँ? तो गांधीजी ने कहा, विश्वास करो। अगर वह मुझसे पूछता, तो मैं उससे यह नहीं कहता कि विश्वास करो। गांधीजी की बात ठीक नहीं है और उस आदमी ने गांधीजी से कहा, विश्वास करूँ? जिस बात को जानता नहीं, विश्वास कैसे करूँ? जिस बात से मैं परिचित नहीं, उसे मानूँ कैसे? गांधीजी ने कहा, बिना माने तो परमात्मा को जाना नहीं जा सकता।

और मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि जो मान लेते हैं, वे कभी नहीं जान सकेंगे। मैं आपसे यह कहता हूँ कि जो परमात्मा को मान लेते हैं, वे कभी नहीं जान सकेंगे। यह आपका दुर्भाग्य होगा कि आप परमात्मा को मानते हों। क्योंकि मानने का अर्थ यह हुआ कि आपने जिज्ञासा और खोज के द्वार बन्द कर दिये। मानने का अर्थ यह हुआ कि अब आपकी कोई तलाश नहीं है, अब आपकी कोई खोज नहीं है, अब आपकी कोई इन्क्वायरी नहीं है। अब आप कुछ खोज नहीं रहे हैं, आप तो मान कर बैठ गये, आप तो मर गये।

श्रद्धा मृत्यु है। और संदेह? संदेह जीवन है। संदेह खोज है। तो मैं आप से श्रद्धालु होने को नहीं, मैं आप से संदेहवान् होने को कहता हूँ। लेकिन संदेह करने का यह मतलब मत समझ लेना कि मैं आपको ईश्वर को न मानने को कह रहा हूँ, क्योंकि न मानना भी मानने का एक रूप है। आस्तिक भी श्रद्धालु होता है, नास्तिक भी श्रद्धालु होता है। आस्तिक की श्रद्धा है कि ईश्वर है, नास्तिक की श्रद्धा है कि ईश्वर नहीं है। वे दोनों अज्ञानी हैं। इन दोनों की श्रद्धाएँ हैं, इन दोनों की खोज नहीं है। संदेह तीसरी अवस्था है, आस्तिक और नास्तिक दोनों ही नहीं। संदेह तो स्वतन्त्र चित्त की अवस्था है। वैसा व्यक्ति निर्भय होकर पूछता है, क्या है? और न वह परम्परा को मानता है, न वह रूढ़ि को मानता है; न वह शास्त्र को मानता है। वह किसी दूसरे के दिये को अंगीकार नहीं करता। वह यही कहता है कि खोजूँगा अपना दिया। वही साथी हो सकेगा। दूसरों के दिये कितनी दूर तक, कितनी सीमा तक साथ दे सकते हैं?

और इस जीवन के रास्ते पर, सच तो यह है कि अपने सिवाय, स्वयं के सिवाय कोई और साथी नहीं है। कितनी ही बड़ी भीड़ खड़ी हो, कोई साथी नहीं है। महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को कितना ही ज्ञान मिला हो; एक रत्ती भर भी, अपना ज्ञान वह आपको देने में समर्थ नहीं हैं। इस जगत में ज्ञान दिया-लिया नहीं जा सकता, और सब चीजें ली-दी जा सकती हैं। और स्मरण रखें, जो नहीं

लिया जा सकता, नहीं दिया जा सकता वही मूल्यवान है। जो लिया जा सकता है, दिया जा सकता है उसका कोई मूल्य नहीं है।

मैं तो ऐसा ही मानता हूँ कि वही चीज संसार का हिस्सा है, जिसको हम ले-दे सकते हैं और वह चीज सत्य का हिस्सा हो जाती है जिसका लेना-देना संभव नहीं है। कोई इस आशा में न रहे कि वह अपनी श्रद्धाओं से सत्य की या परमात्मा की खोज कर लेगा। साधारणतया यही हमें सिखाया जाता है और इसके दुष्परिणाम हुए हैं। इसके परिणाम हुए हैं कि दुनिया में इतने लोग धार्मिक हैं, लेकिन धर्म कहाँ है? इतने मंदिर हैं, इतनी मस्जिदें हैं, लेकिन मंदिर-मस्जिद हैं कहाँ?

कल रात मैं बात करता था—एक संन्यासी के पास मेरा एक मित्र मिलने गया था। उस संन्यासी ने कहा, मंदिर जाते हो? मेरे उस मित्र ने कहा, मंदिर है कहाँ? हम तो जरूर जायँ, कोई मंदिर बता दे! वह संन्यासी तो हैरान हुआ। वह संन्यासी तो मंदिर में ठहरा हुआ था। उस संन्यासी ने कहा, यह जो देख रहे हो, यह क्या है? उस युवक ने कहा, यह तो मकान है, यहाँ मंदिर कहाँ है? यह तो मकान है। और उस युवक ने कहा, सारी जमीन पर, जिनको लोग मंदिर और मस्जिद कहते हैं, वे मकान हैं, मंदिर कहाँ हैं? और जिनको आप मूर्तियाँ कह रहे हैं, जिनको आप भगवान की मूर्तियाँ कह रहे हैं—कैसी आत्म-प्रवंचना है, कैसा धोखा है! मिट्टी और पत्थर को, अपनी कल्पना से हम भगवान बना लेते हैं, जैसे कि हम भगवान के स्रष्टा हैं।

सुना था मैंने कि भगवान मनुष्यों का स्रष्टा है, देखा यही कि आदमी, मनुष्य-मनुष्य ही भगवान के स्रष्टा हैं और हरएक आदमी अपनी-अपनी शकल में भगवान को बनाये हुए बैठा है। भगवान ने दुनिया को कभी बनाया या नहीं, यह तो संदेह की बात है, लेकिन आदमी ने भगवान की खूब शकलें बनायी हैं, यह स्पष्ट ही है। और जो भगवान आदमी का बनाया हुआ हो, उसे भगवान कहना, आदमी के अज्ञान

और अहंकार की घोषणा के सिवाय और कुछ भी नहीं है। जो आदमी का बनाया हुआ हो, उसे भगवान कहना, आदमी के अज्ञान और अहंकार की घोषणा के सिवाय और क्या है? कैसा धोखा आदमी अपने को दे सकता है!

यह हमारा निम्नतम अहंकार है कि हम सोचते हैं कि जो हम बनाते हैं, वह भगवान हो सकता है। जो नहीं बनाया जा सकता, और जिसे कोई कभी नहीं बना सकेगा और जो सब बनाने के पहले है और सब बनाने के बाद भी शेष रह जाता है, उसे हम भगवान कहते हैं। उसका मंदिर कहाँ है? और उसकी मस्जिद कहाँ है? और उसके मानने वाले लोग कहाँ हैं? असल में उसका कोई मानना नहीं होता, उसका तो जानना होता है। मानना नहीं होता उसका कोई, उसका जानना होता है। अन्धा प्रकाश को मान लेगा, तो उसके मानने का क्या मूल्य होगा? और वह प्रकाश की जो कल्पना करेगा, वह भी कैसी होगी? उसका प्रकाश से क्या सम्बन्ध होगा?

रामकृष्ण के पास एक दफा एक व्यक्ति आया। रामकृष्ण से उसने कहा कि मुझे सत्य के सम्बन्ध में कुछ बतायें। रामकृष्ण से उसने कहा कि मुझे परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ कहें। रामकृष्ण ने कहा, मुझे तुम्हारे पास आँखें तो दिखायी नहीं देतीं, तुम समझोगे कैसे? वह बोला, आँखें मेरे पास हैं। रामकृष्ण ने कहा, अगर उन्हीं आँखों से परमात्मा और सत्य जाना जाता होता, तो परमात्मा और सत्य को जानने की जरूरत ही न रह जाती, सभी लोग उसे जानते। और भी आँख है। और भी आँखें हैं। वह बोला, फिर भी कुछ तो समझायें। रामकृष्ण ने एक कहानी कही। वह कहानी बड़ी मीठी है, बड़ी अद्‌भुत है।

बड़ी प्राचीन कथा है, हजारों-हजारों ऋषियों ने उस कहानी को कहा है और आने वाले जमानों में भी हजारों-हजारों ऋषि उस कहानी

को कहूँगा। उसमें बड़ी पवित्रता समाविष्ट हो गयी है। बड़ी छोटी-सी कहानी, बड़ी सरल-सी ग्रामीण कहानी है—रामकृष्ण ने कहा, एक गाँव में एक अन्धा था और उस अन्धे को दूध से बहुत प्रेम था। उसके मित्र जब भी आते, उसके लिए दूध ले आते। उसने एक दफा अपने मित्रों से पूछा, इस दूध को मैं इतना प्रेम करता हूँ, इतना प्रेम करता हूँ कि मैं जानना चाहता हूँ कि दूध कैसा है? क्या है? मित्रों ने कहा, मुश्किल है, कैसे बतायें? फिर भी उस अन्धे ने कहा, कुछ तो समझायें, किसी तरह समझायें?

उसके एक मित्र ने कहा, दूध बगुले के पंख जैसा सफेद होता है। अन्धा बोला, मुझसे मजाक न करो। बगुले को मैं जानता नहीं, उसके पंख की सफेदी को नहीं जानता। मैं कैसे समझूँगा कि दूध है! कुछ और सरल रास्ता अख्तियार करें, तो शायद मैं समझ जाऊँ। उसके मित्र ने कहा, कैसे समझायें! उस मित्र ने कहा, बगुला जो होता है, उसकी गर्दन घास काटने के हँसिये की तरह टेढ़ी होती है। अन्धा बोला, आप पहेलियाँ बुझा रहे हैं। मैंने कभी देखा नहीं हँसिया। मुझे पता नहीं, वह कैसा टेढ़ा होता है? तीसरे मित्र ने कहा, इतनी दूर क्यों जाते हो? उसने अपना हाथ मोड़ कर उस अन्धे से कहा, इस हाथ पर हाथ फेरो, इससे पता चल जायेगा कि हँसिया कैसा होता है?

उसने उसके तिरछे हाथ पर हाथ फेरा—घुमा हुआ, मुड़ा हुआ हाथ, औंधा हाथ। वह अन्धा नाचने लगा। वह बोला, मैं समझ गया, दूध तो मुड़े हुए हाथ की तरह होता है।

और रामकृष्ण ने कहा, सत्य के सम्बन्ध में जो नहीं जानते हैं, उनको बतायी हुई सारी बातें ऐसी ही हो जाती हैं। इसलिए आपसे सत्य के सम्बन्ध में न कुछ कहा गया है और न कभी कुछ कहा जा सकेगा। आपसे यह नहीं कहा जा सकता कि सत्य क्या है? आपसे इतना कहा जा सकता है कि सत्य को कैसे जाना जा सकता है। सत्य

तो नहीं बताया जा सकता, लेकिन सत्य की विधि का विचार किया जा सकता है। उस विधि में श्रद्धा का कोई हिस्सा नहीं है, खोज और अन्वेषण, जिज्ञासा और अभीप्सा—उसमें कोई चीज को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है।

जब से दुनिया के धार्मिकों ने यह शुरुआत की कि भगवान् को मान लो, स्वीकार कर लो, अंगीकार कर लो, तब से जो भी विवेकशील हैं, वे सब भगवान् के विरोध में खड़े हो गये हैं। क्योंकि स्वीकार करना, अज्ञान में किसी चीज को मान लेना, जिसका थोड़ा भी विचार जाग्रत हो और विवेक प्रबुद्ध हो, उसके लिए कभी भी सम्भव नहीं होगा। अपने हाथों से धार्मिकों ने धर्म को विवेक-विरोधी बना कर खड़ा कर दिया है। तो मैं आज की सुबह आपसे यह कहना चाहूँगा कि धर्म का विवेक से कोई विरोध नहीं है। धर्म भी परिपूर्ण रूप से विवेक को प्रतिष्ठा देता है और विवेक धर्म का खण्डन नहीं है। विवेक के माध्यम से ही धर्म की परिपूर्ण उपलब्धि होती है। पर अपने भीतर विवेक को जगाना होता है, श्रद्धा को नहीं।

विवेक और श्रद्धा मनुष्य के भीतर दो दिशाएँ हैं। श्रद्धा का अर्थ है कि मैं मान लूँ, जो कहा जाय। दुनिया के जितने प्रचारवादी हैं, सब यही चाहते हैं कि वह जो कहें, आप मान लें। दुनिया के जितने प्रोपेगैंडिस्ट हैं, चाहे वे राजनीतिक हों, चाहे धार्मिक हों, वे चाहते हैं, जो भी वे कहें, आप मान लें। उनकी कही हुई बात में, आप को कोई इनकार न हो। उन सबकी चेष्टाएँ यह हैं कि आपका विवेक बिलकुल सो जाय और आपके भीतर एक अन्धी स्वीकृति पैदा हो जाय।

इसका परिणाम यह हुआ है कि जो बहुत कमजोर हैं और जिनके भीतर विवेक की कोई सम्भावना नहीं है, या जिनका विवेक बहुत क्षत था, क्षीण हो गया था, या जो साहस नहीं कर सकते थे, किसी कारण से अपने विवेक को जगाने का, वे सारे लोग धर्म के पक्ष में खड़े रह

गये। और जिनमें थोड़ा भी साहस था, वे सब धर्म के विरोध में चले गये। उन विरोधी लोगों ने, विज्ञान को खड़ा किया और इन कमजोर लोगों ने धर्म को सम्हाले रखा।

आज दोनों सामने खड़े हैं और धर्म रोज क्षीण होता जाता है, विज्ञान रोज विकसित होता जाता है। इसे कोई देखता नहीं कि यह क्या हो रहा है ? हम समझ रहे हैं कि विज्ञान नुकसान पहुँचा रहा है। लेकिन विज्ञान नुकसान नहीं पहुँचा रहा है। धर्म के दरवाजे विवेकशील के लिए जब तक बन्द रहेंगे, तब तक विवेकशील विज्ञान के पक्ष में खड़ा रहेगा। धर्म के द्वार विवेकशील के लिए खुल जाने चाहिए और विवेकहीन के लिए बन्द हो जाने चाहिए। श्रद्धा धर्म के लिए आधार नहीं रह जानी चाहिए। ज्ञान, विवेक, शोध को धर्म का अंग हो जाना चाहिए। अगर यह हो सका, तो धर्म से बड़ा विज्ञान इस जगत में दूसरा नहीं है। और जिन लोगों ने धर्म को खोजा और जाना है, उनसे बड़े वैज्ञानिक नहीं हुए। यह उनकी अप्रतिम खोज है। मनुष्य के जीवन में उस खोज से बहुमूल्य कुछ भी नहीं है। उन सत्यों की थोड़ी-सी भी झलक मिल जाय, तो जीवन अपूर्व आनन्द और अमृत से भर जाता है।

तो मैं आपसे कहूँगा, विवेक-जागरण श्रद्धा नहीं है। स्वीकार कर लेना नहीं, शोध कर लेना। किसी दूसरे को अंगीकार कर लेना नहीं, स्वयं अपनी साधना और अपने पैरों पर खड़ा होना और जानना, चाहे अनेक जन्म लग जायें। दूसरे के हाथ से लिया सत्य, अगर एक क्षण में मिलता हो, तो भी किसी कीमत का नहीं है। और अगर अनेक जन्मों के श्रम और साधना से, अपना सत्य मिलता हो, तो उसका मूल्य है। और जिनके भीतर थोड़ी-सी मनुष्य की गरिमा है, जिनको थोड़ा भी गौरव है कि हम मनुष्य हैं, वे किसी के दिये हुए झूठे सत्यों को स्वीकार नहीं करेंगे।

लेकिन हम सब झूठे सत्यों को स्वीकार किये बैठे हैं। और हमने अच्छे-अच्छे शब्द ईजाद कर लिये हैं, जिनके माध्यम से हम अपनी श्रद्धा को जाहिर करते हैं। यह बहुत बड़ी प्रवंचना है, यह बहुत बड़ा डिसेप्शन है। यह समाप्त होना जरूरी है। तो मैं आपसे कहूँगा, आपके भीतर बहुत बार श्रद्धा होती होगी कि मान लें, तो कमजोर मन है। कौन, खुद खोजें। जितने आलसी हैं, जितने तामसी हैं, वे सब श्रद्धालु हो जायेंगे। लेकिन कौन खुद को खोजे, खुद की कौन चेष्टा करे ? कृष्ण कहते हैं तो ठीक ही होगा और महावीर कहते हैं, तो ठीक ही होगा, क्राइस्ट कहते हैं तो ठीक ही होगा। उन्होंने सारी खोज कर ली, हमें तो सिर्फ स्वीकार कर लेना है।

यह वैसा ही पागलपन है, जैसा कोई आदमी, दूसरों को प्रेम करते देख कर, यह समझे कि मुझे प्रेम करने से क्या प्रयोजन। दूसरे लोग प्रेम कर रहे हैं, मुझे तो सिर्फ समझ लेना है, ठीक है। लेकिन दूसरे को प्रेम करते देख कर, क्या आप समझ पायेंगे कि प्रेम क्या है ? इस जगत में सारे लोग प्रेम करते हों, मैं देखता रहूँ, तो भी मैं नहीं समझ पाऊँगा, जब तक कि वह आन्दोलन मेरे हृदय में न हो। जब तक कि वह किरणें मुझे आन्दोलित न कर जायँ, जब तक कि वह हवाएँ, मुझे न छू जायँ, तब तक मैं प्रेम को नहीं जान सकूँगा। सारी दुनिया प्रेम करती हो, तो वह किसी मतलब की नहीं।

सारी दुनिया बुद्ध, कृष्ण और क्राइष्ट से भरी पड़ी हो और मुझे सत्य का स्वयं अनुभव न होता हो, तो मुझे कुछ पता न चलेगा। कोई रास्ता नहीं है। सारी दुनिया में आँख वाले हों और मैं अन्धा हूँ तो क्या होगा ? उन सबकी मिली हुई आँखें भी, मेरी दो आँखों के बराबर मूल्य नहीं रखती हैं। इस दुनिया में दो अरब लोग हैं, तीन अरब लोग हैं, छह अरब आँखें हैं। एक अन्धे आदमी की दो आँखों का जो मूल्य है, वह छह अरब आँखों का नहीं है। मैं

आपसे यह कहना चाहूँगा, अपने भीतर श्रद्धा की जगह, विवेक को जगाये रखने का उपाय करना चाहिए और विवेक को जगाने के क्या नियम हो सकते हैं, उस सम्बन्ध में थोड़ी बात आपसे कहूँ।

पहली बात जन्म के साथ प्रत्येक मनुष्य को, दुर्भाग्य से किसी न किसी धर्म में पैदा होने का मौका मिलता है। दुनिया अच्छी होगी तो हम दुर्भाग्य कम कर सकेंगे। लेकिन अभी तो यह है। और तब परिणाम यह होता है कि जब उसमें विवेक का कोई जागरण नहीं होता है, बाल-मन होता है, चुपचाप चीजें स्वीकार कर लेने की मनोस्थिति होती है, तब सारे धर्मों के सत्य, उसके मन में प्रविष्ट करा दिये जाते हैं। तब उसके मन में सारी बातें डाल दी जाती हैं। वह उन पर श्रद्धा करने लगता है।

मैं एक गाँव में गया। वहाँ एक अनाथालय भी देखने गया। वहाँ कोई पचास बच्चे थे। उस अनाथालय के संयोजक ने मुझसे कहा कि इनको हम धार्मिक शिक्षा भी देते हैं। मुझे यह समझ कर कि मैं साधु जैसा हूँ उसने सोचा कि यह खुश होंगे कि मैं धर्म की शिक्षा देता हूँ। मैंने कहा कि इससे बुरा काम दूसरा नहीं है, दुनिया में। क्योंकि धर्म की शिक्षा आप क्या देंगे ? धर्म की कोई शिक्षा होती है ? धर्म की साधना होती है, शिक्षा नहीं होती।

अभी मैं सुनता हूँ कि एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक ने वहाँ अमरीका में, एक संस्था खोली, जहाँ वह प्रेम की शिक्षा देते हैं। यह तो बड़ी बेवकूफी की बात है, यह तो बड़ी मूर्खतापूर्ण बात है। और इस संस्था से जो लोग प्रेम की शिक्षा लेकर निकलेंगे, इस जगत में, वे प्रेम कभी नहीं कर पायेंगे इसे स्मरण रखें, कैसे प्रेम करेंगे ? वह जब भी प्रेम करेंगे, तब यह शिक्षा बीच में आ जायेगी और जब उनके भीतर प्रेम उठेगा, तब उनके सिखाये हुए ढंग बीच में आ जायेंगे और वह अभिनय करने लगेंगे, प्रेम नहीं कर सकेंगे। जब उनके

हृदय में, कुछ कहने को होगा, तब वह उन किताबों से पढ़ कर कहेंगे, जिनमें लिखा हुआ है कि प्रेम की बातें कैसी कहनी चाहिए और तब वैसा आदमी, जो प्रेम में शिक्षित हुआ है, वंचित हो जायगा और यह जो आदमी धर्म में शिक्षित होगा, वह धर्म से वंचित हो जायगा।

क्योंकि धर्म तो प्रेम से भी बड़ी गूढ़ और रहस्य की चीज है। प्रेम को तो कोई सीख भी ले, धर्म को कैसे सीख सकेगा ? धर्म की कोई लर्निंग नहीं होती। वह कोई गणित थोड़े ही है, कोई फिजिक्स थोड़े ही है, कोई भूगोल थोड़े ही है कि आपने समझा दिया, लोगों ने याद कर लिया और परीक्षा दे दी। धर्म की कोई परीक्षा हो सकती है ? अगर धर्म की परीक्षा नहीं हो सकती है, तो शिक्षा भी नहीं हो सकती है। जिस चीज की परीक्षा हो सके, उसकी ही शिक्षा हो सकती है।

तो मैंने उनसे कहा कि यह तो आप बड़ा बुरा काम कर रहे हैं। इन बच्चों के मन को बड़ा नुकसान पहुँचा रहे हैं, क्या शिक्षा देते होंगे ? तो वे बोले, आप क्या कहते हैं, जब धर्म की शिक्षा नहीं होगी, तो लोग बिलकुल बिगड़ जायेंगे। मैंने कहा, दुनिया में इतनी धर्म की शिक्षा है, लोग भले दिखाई पड़ रहे हैं। दुनिया में इतनी धर्म की शिक्षा है, जितनी बाइबिल दीखती है उतनी कोई किताब नहीं दीखती, जितनी गीता पढ़ी जाती है, कोई किताब नहीं पढ़ी जाती, जितने रामायण के पाठ होते हैं, उतने कौनसी किताब के होते होंगे ? कितने संन्यासी हैं, कितने साधु हैं। एक-एक धर्म के कितने प्रचारक हैं। कैथोलिक ईसाइयों के प्रचारकों की संख्या ११ लाख है। और इसी तरह सारी दुनिया के धर्म प्रचारकों की संख्या है। यह इतना प्रचार, इतनी शिक्षा, इसके बाद आदमी कोई बना हुआ तो मालूम नहीं होता है। इससे बिगड़ी शकल और क्या होगी, जो आदमी की आज है।

तो मैं आपसे यह कहना चाहूँगा कि धर्म-शिक्षा से आदमी नहीं ठीक होगा। मैंने उनसे कहा, यह तो गलत बात है। फिर भी मैं समझूँ,

आप क्या शिक्षा देते हैं ? उन्होंने कहा, आप कोई भी प्रश्न पूछिये, यह बच्चे हर प्रश्न का उत्तर देंगे । मैंने कहा यही दुर्भाग्य है । सारी दुनिया में किसी से पूछिये, ईश्वर है ? कह देगा, है । यही खतरा है । जिनको कोई पता नहीं है, वे कहते हैं, है और इसका परिणाम यह होगा कि वह धीरे-धीरे अपने इस उत्तर पर खुद विश्वास कर लेंगे कि ईश्वर है, और तब उनकी खोज समाप्त हो जायगी ।

मैंने उन बच्चों से पूछा, आत्मा है ? वे सारे बच्चे बोले, है । उनके संयोजक ने पूछा, आत्मा कहाँ है ? उन सब बच्चों ने हृदय पर हाथ रखा और कहा, यहाँ । मैंने एक छोटे बच्चे से पूछा, हृदय कहाँ है ? उसने कहा, यह हमें सिखाया नहीं गया । यह हमें बताया नहीं गया । मैंने उन संयोजक से कहा था, ये बच्चे जब बड़े हो जायेंगे, तो यही बातें दोहराते रहेंगे । और जब भी प्रश्न उठेगा, आत्मा है, तो यांत्रिक, मेकेनिकल रूप से, उनके हाथ भीतर चले जायेंगे और वे कहेंगे, यहाँ । यह बिलकुल झूठा हाथ होगा, जो सीखने की वजह से चला जायगा ।

आपके जितने उत्तर हैं, परमात्मा के सम्बन्ध में, धर्म के सम्बन्ध में, वह सब सीखे हुए हैं ।

विवेक-जागरण के लिए पहली शर्त है, जो सीखा हुआ हो, सत्य के सम्बन्ध में, उसे कचरे की भाँति बाहर फेंक देना है । जो आपके माँ-बाप ने, आपकी शिक्षा ने, आपकी परम्परा ने, आपके समाज ने जो भी सिखाया हो, उसे कचरे की तरह बाहर फेंक देना । धर्म इतनी ओछी बात नहीं है कि कोई सिखा सके । इसमें मैं आपके माँ-बाप का, आपकी परम्परा का अपमान नहीं कर रहा हूँ, इसमें मैं धर्म की प्रतिष्ठा कर रहा हूँ । स्मरण रखें, मैं यह नहीं कह रहा कि परम्परा बुरी बात है ।

मैं यह कह रहा हूँ कि धर्म इतनी बड़ी बात है कि परम्परा नहीं सिखा सकती । कोई माँ-बाप नहीं सिखा सकते । कोई पाठशाला नहीं सिखा सकती । जो लोग समझते हैं कि सिखाया जा सकता है धर्म, उनको धर्म की महिमा का पता नहीं है ।

पहली बात है जिज्ञासा, स्वतन्त्र जिज्ञासा और जो सिखाया गया है, उसे कचरे की भाँति फेंक देने की जरूरत । इसके लिए साहस चाहिए । अपने वस्त्र छोड़ कर नग्न हो जाने के लिए उतने साहस की जरूरत नहीं है, जितने साहस की जरूरत मन के उन वस्त्रों को छोड़ने के लिए है, जो कि परम्परा आपको पहना देती है और उन ढाँचों को तोड़ने के लिए है, जो समाज आपको दे देता है । हम सबके मन बँधे हुए हैं एक ढाँचे में । और उस ढाँचे में जो बँधा है, वह सत्य की उड़ान भर नहीं सकेगा । इसके पहले कि कोई सत्य की तरफ अग्रसर हो, उसे सारे ढाँचे तोड़कर मिटा देने होंगे । मनुष्य ने जितने भी विचार परमात्मा के सम्बन्ध में सिखाये हैं, उन्हें छोड़ देना होगा ।

एक रात को कुछ शराबी एक नदी पर गये हुए थे और उन्होंने सोचा कि पूर्णिमा की रात है । नाव में बैठ कर यात्रा करें । वे नाव में बैठे । उन्होंने पतवार चलायी और उन्होंने समझा कि नाव चलनी शुरू हो गयी । वे रात भर नाव चलाते रहे । उन्होंने सोचा कि बड़ी यात्रा हो गयी । सुबह जब ठण्डी हवाएँ चलने लगीं और उनका नशा थोड़ा उतरा, तब उनमें से एक ने कहा कि हम देखें तो कितनी दूर निकल आये, वापिस लौटें । वे घाट पर उतरे । उन्होंने देखा कि अरे ! रात भर की मेहनत व्यर्थ गयी । वे नाव को खोलना भूल गये थे । वह नाव वहीं खूँटे से बँधी हुई थी । चलायी उन्होंने रात भर और समझा कि यात्रा हो रही है, लेकिन नाव को खूँटे से खोलना भूल गये थे ।

वे लोग, जिन्होंने अपनी आत्मा की नाव को, सत्य और परमात्मा की तरफ लगाया हो, अगर उन्होंने परम्परा और समाज के खूँटे से अपने को नहीं छोड़ा, तो एक दिन वे पायेंगे, नाव वहीं खड़ी है । एक दिन जब वे तट पर उतर कर देखेंगे, तो पायेंगे कि जीवन व्यर्थ गया । हमने पतवार तो बहुत चलायी, लेकिन नाव एक इंच भी आगे नहीं जा सकी । नाव को गतिमान करने के लिए चलाना ही काफी नहीं, छोड़ना

भी जरूरी है। इससे पहले कि आप सत्य की तरफ चलें, आप अपने को छोड़ें। जो छोड़ना भूल जायगा, उसका चलना सार्थक नहीं होगा।

आपने कहीं अपने को छोड़ा है क्या ? मैं तो हैरान हूँ। सत्य की तरफ जो लोग उत्सुक होते हैं, वे उतने ही जोर से बाँधने लगते हैं, छोड़ने के बजाय। अगर वह जैन हैं, तो और ज्यादा जैन होने लगते हैं। अगर वे हिन्दू हैं, तो और ज्यादा हिन्दू होने लगते हैं। अगर वे मुसलमान हैं, तो और ज्यादा मुसलमान होने लगते हैं। वह उस खूँटे पर जंजीर को और गहरा करने लगते हैं। सत्य की तरफ जिसे जाना है, उसे हिन्दू होने का मौका कहाँ है ? जिसे सत्य की तरफ जाना है, वह जैन कैसे हो सकता है ? जिसे परमात्मा में उत्सुकता है, उसकी उत्सुकता मुसलमान और ईसाई होने में कैसे हो सकती है ? और अगर ये उसकी उत्सुकताएँ हैं, तो खूँटे हैं और नाव को आगे नहीं जाने देंगे।

विवेक-जागरण के लिए पहली जरूरत है, इन खूंटों से अपने को छोड़ लें, जिनसे समाज ने आपको बाँध दिया है। समाज की जरूरत है, बाँधने के लिए। समाज को मुश्किल पड़ेगी, अगर आप बँधे हुए न हों। समाज का सारा ढाँचा दिक्कत में पड़ जायगा, अगर वह आपको न बाँधे। इसलिए समाज आपको बाँधने की चेष्टा करता है। समाज की व्यवस्था, समाज की सुव्यवस्था इस पर निर्भर है कि आप बँधे हुए हों। हर आदमी खूँटे से बँधा हुआ हो, तो समाज व्यवस्थित होता है। समाज अपनी व्यवस्था के लिए, आपको बलि चढ़ा देता है। समाज व्यक्तियों का बलिदान कर लेता है, व्यवस्था के लिए। इसलिए समाज जितना व्यवस्थित होगा, व्यक्तियों का बलिदान उतना जरूरी हो जायगा।

स्टैलिन या हिटलर जैसे लोगों ने व्यक्तियों को बिलकुल समाप्त कर दिया, क्योंकि समाज की पूरी व्यवस्था उनको करनी थी। उन्होंने व्यक्तियों को खूँटों से बाँधा नहीं, व्यक्तियों को खूँटे बना दिया। अब

उनको छूटने की गुंजाइश नहीं रखी। समाज की जरूरत है कि व्यक्ति बिलकुल मर जाय। वह मशीन की तरह व्यवहार करे। समाज जो कहे उस तरफ जाय, समाज जो व्यवस्था दे, उसको माने। समाज को सत्य से कोई मतलब नहीं है, समाज को तो सुव्यवस्था से मतलब है। इसलिए समाज की जरूरतें आपको बाँधेगी।

लेकिन एक सीमा पर आपकी अपनी जरूरत है; और सबको आपको छोड़ना पड़ेगा। छोड़ने का मतलब यह नहीं है कि आप उच्छृङ्खल हो जायेंगे। छोड़ने का यह मतलब नहीं है कि आप स्वच्छन्द हो जायेंगे। छोड़ने का यह मतलब नहीं है कि आप समाज-विरोधी हो जायेंगे। छोड़ने का मतलब केवल इतना है कि आपके चित्त की भूमिका, जंजीरों से बँधी नहीं रह जायगी। आप किन्हीं धारणाओं में अपने को कैद नहीं करेंगे, किन्हीं कन्सेप्ट्स में अपने को बाँधेंगे नहीं और किन्हीं संस्कारों को आप अज्ञान में स्वीकार नहीं करेंगे। आप खोज में संलग्न होंगे, आप आन्तरिक जिज्ञासा के लोक में प्रवेश करने लगेंगे और धीरे-धीरे वहाँ आपकी जो गति होगी और जो अनुभव आपको होंगे, वे ही अनुभव आपके पथ के प्रदीप बनेंगे, आपके लिए प्रकाश बनेंगे।

पहली जरूरत है, समाज ने जो ढाँचे और संस्कार दिये हैं, उनको कोई व्यक्ति क्षीण करे, उनको छोड़े, मन से। नहीं, इतना ही काफी नहीं है। समाज के ढाँचे क्षीण हो जायँ, तो मन उड़ने को मुक्त हो जाता है। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि उड़ान शुरू हो गयी। उड़ने की सम्भावना पैदा हो जाती है। समाज के ढाँचे, परम्परा, शास्त्र, सम्प्रदाय इनके द्वारा प्रचारित संस्कार, इनको छोड़ कर चेतना इतनी हल्की हो जाती है कि चेतना उड़ सकती है। फिर साथ में दूसरी चेष्टा, अन्तर्दृष्टि के लिए करनी होती है। एक तो खूँटे से छोड़ देना, फिर अन्तर्दृष्टि की पतवार चलानी होती है, तब नाव में गति आती है। अन्तर्दृष्टि की पतवार का क्या अर्थ है ? अन्तर्दृष्टि की पतवार का अर्थ

है कि चीजों को, जैसी वे दिखाई पड़ती हैं, उनको वैसी ही मत मान लेना। उनके भीतर बहुत-कुछ है। एक आदमी मर जाता है। हमने कहा, आदमी मर गया है। जो आदमी इस बात को यहीं समझ कर चुप हो गया, उसके पास अन्तर्दृष्टि नहीं है।

गौतम बुद्ध एक महोत्सव में भाग लेने जाते हैं। रास्ते में उनके रथ पर उनका सारथी था और वे थे। और उन्होंने एक बूढ़े आदमी को देखा। वह उन्होंने पहला बूढ़ा देखा। जब गौतम बुद्ध का जन्म हुआ, तो ज्योतिषियों ने उनके पिता से कहा कि यह व्यक्ति बड़ा होकर या तो चक्रवर्ती सम्राट होगा अथवा संन्यासी हो जायेगा। उनके पिता ने पूछा, मैं इसे संन्यासी होने से कैसे रोक सकता हूँ? उस ज्योतिषी ने बड़ी अद्भुत बात कही थी और वह समझने जैसी है। उस ज्योतिषी ने कहा, अगर इसे संन्यासी होने से रोकना है, तो इसे ऐसे मौके मत देना कि इसमें अन्तर्दृष्टि पैदा हो जाय। पिता बहुत हैरान हुए। यह क्या बात हुई, उनके पिता ने पूछा! ज्योतिषी ने कहा, इसको ऐसे मौके मत देना कि इसको अन्तर्दृष्टि पैदा हो जाय। उनके पिता ने कहा, यह तो बड़ा मुश्किल हुआ, क्या करेंगे? उस ज्योतिषी ने कहा, इसकी बगिया में फूल कुम्हलाने के पहले अलग कर देना। यह कभी कुम्हलाया हुआ फूल न देख सके। क्योंकि यह कुम्हलाया हुआ फूल देखते ही पूछेगा, क्या फूल कुम्हला जाते हैं? और यह पूछेगा, क्या मनुष्य भी कुम्हला जाते हैं? और यह पूछेगा, क्या मैं भी कुम्हला जाऊँगा? और उसमें अन्तर्दृष्टि पैदा हो जायेगी। इसके आस-पास बूढ़े लोगों को मत आने देना, अन्यथा यह पूछेगा कि ये बूढ़े हो गये, तो मैं भी बूढ़ा हो जाऊँगा। यह कभी मृत्यु को न देखे, पीले पत्ते गिरते हुए न देखे। अन्यथा यह पूछेगा, पीले पत्ते गिर जाते हैं, तो क्या मनुष्य भी एक दिन पीला होकर गिर जायेगा? क्या मैं गिर जाऊँगा? और तब इसमें अन्तर्दृष्टि पैदा हो जायेगी।

पिता ने बड़ी चेष्टा की और उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि बुद्ध ने युवा होते-होते तक कभी पीला पत्ता नहीं देखा, कुम्हलाया हुआ फूल नहीं देखा, बूढ़ा आदमी नहीं देखा। किसी के मरने की कोई खबर नहीं सुनी। लेकिन यह कब तक हो सकता था? इस दुनिया में किसी आदमी को कैसे रोका जा सकता है कि मृत्यु को न देखे, वह कैसे रोका जा सकता है कि पीले पत्ते न देखे, कैसे रोका जा सकता है कि कुम्हलाये फूल न देखे। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ, आपने भी मरता हुआ आदमी नहीं देखा होगा और अभी आपने पीला पत्ता नहीं देखा, अभी आपने कुम्हलाया हुआ फूल नहीं देखा। बुद्ध को उसके बाप ने रोका बहुत मुश्किल से, तब भी एक दिन उन्होंने देख लिया। आपको कोई नहीं रोके हुए हैं और आप नहीं देख पा रहे हैं। अन्तर्दृष्टि नहीं है, नहीं तो आप संन्यासी हो जाते। क्योंकि उस ज्योतिषी ने कहा था कि अगर अन्तर्दृष्टि पैदा होती है, तो यह संन्यासी हो जायेगा। तो जितने लोग संन्यासी नहीं हैं, मानना चाहिए कि उनमें अन्तर्दृष्टि नहीं होगी।

खैर, एक दिन बुद्ध को दिखाई पड़ गया। वह यात्रा पर गये, एक महोत्सव में भाग लेने, और एक बूढ़ा आदमी दिखाई पड़ा। और उन्होंने तत्क्षण अपने सारथी से पूछा, इस मनुष्य को क्या हो गया? तो सारथी ने कहा, यह वृद्ध हो गया। बुद्ध ने पूछा, क्या हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है? उस सारथी ने कहा, हर मनुष्य वृद्ध हो जाता है। बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी? उस सारथी ने कहा, भगवन्, कैसे कहूँ? लेकिन कोई भी अपवाद नहीं है। आप भी हो जायेंगे। बुद्ध ने कहा, रथ वापस लौटा लो वापस—रथ को वापस फेर लो। सारथी बोला, क्यों? बुद्ध ने कहा, मैं बूढ़ा हो गया।

यह अन्तर्दृष्टि है। बुद्ध ने कहा, मैं बूढ़ा हो गया। अद्भुत बात कही, बहुत अद्भुत बात कही और वह लौट भी नहीं पाये कि उन्होंने एक मृतक को देखा। बुद्ध ने पूछा, यह क्या हुआ? तो सारथी ने

कहा, यह बुढ़ापे के बाद का दूसरा चरण है। यह आदमी मर गया। बुद्ध ने पूछा, क्या हर आदमी मर जाता है? सारथी ने कहा, हाँ हर आदमी। बुद्ध ने पूछा, क्या मैं भी? और सारथी ने कहा, आप भी, कोई भी अपवाद नहीं है। बुद्ध ने कहा, अब लौटाओ या न लौटाओ, सब बराबर है। सारथी ने कहा, क्यों? बुद्ध ने कहा, मैं मर गया।

यह अन्तर्दृष्टि है। चीजों को उनके ओर-छोर तक देख लेना, चीजें जैसी दिखाई पड़ें, उनको वैसी स्वीकार न कर लेना। उनके अन्तिम चरण तक, जिसको अन्तर्दृष्टि पैदा होगी, वह इस भवन की जगह खण्डहर भी देखेगा। जिसे अन्तर्दृष्टि होगी, वह इतने जिन्दा लोगों की जगह इतने मुर्दा लोग भी देखेगा—इन्हीं के बीच, इन्हीं के साथ। **जिसे अन्तर्दृष्टि होगी, वह जन्म के साथ ही मृत्यु को भी देख लेगा, सुख के साथ दुःख को भी और मिलन के साथ विछोह को भी।**

अन्तर्दृष्टि आर-पार देखने की विधि है। और जिस व्यक्ति को सत्य जानना हो, उसे आर-पार देखना सीखना होगा। क्योंकि परमात्मा कहीं और नहीं है। जिसे आर-पार दीखना आ जाता है, उसे यहीं परमात्मा उपलब्ध हो जाता है। वह आर-पार देखने के माध्यम से हुआ दर्शन है।

एक बहुत बड़ा राजा हुआ। वह एक रात सोया हुआ था। वह बगदाद में हुआ, एक मुसलमान राजा था। वह अपने महल में रात में सोया हुआ था। और उसने अपने ऊपर छत पर किसी के चलने की, आवाज सुनी। उसने सोचा, यह कैसा पागलपन है, इतनी रात को महल की छत पर कौन चलता है। उसने चिल्ला कर पूछा, आधी रात है, यह कौन ऊपर छत पर चल रहा है—कौन है जो ऊपर छत पर चल रहा है? एक आदमी ने ऊपर से कहा, मेरा ऊँट खो गया है, उसे खोज रहा हूँ। वह राजा हैरान हुआ, उसने कहा, पागल मालूम होते हो। ऊँट कहीं छतों पर खो सकते हैं?

उस आदमी ने कहा कि अगर मकानों की छतों पर ऊँट नहीं खो सकते, और अगर मकानों की छतों पर ऊँट नहीं खोजे जा सकते, तो तुम वहाँ राज-सिंहासन पर परमात्मा को क्यों खोज रहे हो? कभी सोचा, कि मकान पर तो ऊँट खो भी जायँ, मिल भी जायँ; लेकिन राज-सिंहासन पर परमात्मा कभी नहीं मिलेगा। राजा बहुत हैरान हुआ। उसने बहुत कोशिश की कि उस फकीर को, कि कौन आदमी था जिसने ऊपर से यह बात कही, खोजवाया जाय। उसे बहुत ढुँढ़वाया, लेकिन उसका कहीं पता नहीं चला। दिन बीते, राजा वह बात भूल गया।

पर एक दिन एक संन्यासी, एक फकीर दरबार में आया। वह इतना महिमायुक्त था, इतना प्रभावी था कि संतरी उसे रोक नहीं सके, वे पूछ नहीं सके कि आप कैसे जाते हैं? और किसकी आज्ञा से? वह भीतर प्रविष्ट हुआ और दरबार में पहुँच गया। सारे दरबारी घबरा कर खड़े हो गये, खुद राजा भी खड़ा हो गया। और उसने पूछा कि कौन हैं आप, और कैसे आये? क्या प्रयोजन है? उस फकीर ने कहा, इस सराय में मैं कुछ दिन ठहरना चाहता हूँ। राजा ने कहा, सराय? अशिष्ट बात बोल रहे हो। थोड़ा शिष्टाचार का भी बोध नहीं है, यह मेरा महल है, यह मेरा निवास है।

वह फकीर जोर से हँसने लगा और बोला, इससे पहले भी मैं आया था, लेकिन तुमको नहीं पाया था। तब दूसरा आदमी इस सिंहासन पर था। उसके पहले भी आया था, तब उसको भी नहीं पाया था, तब तीसरा आदमी इस सिंहासन पर था। यहाँ मैं कई दफा आया, हर दफा आदमी बदल जाते हैं, इसलिए क्षमा करें, मुझे ऐसा शक हुआ, यह सराय है, यहाँ लोग आते हैं और जाते हैं। और इसलिए मैंने कहा कि इस सराय में मुझे ठहरने का कोई अवकाश मिल जाय, तो बड़ी कृपा हो।

राजा ने उठ कर उसके पैर पकड़ लिये और कहा कि निश्चित हो गया, जिस आदमी को मैं खोजता था, वह तुम्हीं हो सकते हो। क्या उस रात मेरी छत पर ऊँट तुम्हीं खोजते थे ? क्योंकि तुम्हारे सिवाय और कौन खोजेगा ? वह फकीर बोला, मैं ही था और आया था कि शायद तुम्हें अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाय और आज फिर आया हूँ कि शायद अन्तर्दृष्टि पैदा हो जाय। उस राजा ने कहा, बात समझ में आ गयी। और उसने पीछे लौट कर नहीं देखा और महल के बाहर हो गया। उससे जब भी लोग पूछते कि ऐसा तुमने इतनी जल्दी क्यों किया, तो वह कहता, अन्तर्दृष्टि जब पैदा होती है, तो जल्दी और देर का कोई सवाल नहीं रहता।

आर-पार देखने की जरूरत है, तब मकान सराय दिखाई पड़ेगा और आप चलते-फिरते मुर्दे मालूम होंगे। खुद अपने को मुर्दे मालूम होंगे। क्योंकि जो चीज मर जानी है, वह आज ही मरी हुई होनी चाहिए। जो चीज मर जानी है, वह हमेशा मर रही है धीरे-धीरे। मैं जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन से मर रहा हूँ। एक दिन यह मरने की प्रक्रिया पूरी हो जायेगी और मैं समाप्त हो जाऊँगा। उसे लोग मृत्यु कहेंगे, लेकिन जो देखता है, वह जान रहा है कि मैं प्रति क्षण मर रहा हूँ। नहीं तो मृत्यु घटित कैसे हो ? मरने का क्रमिक विकास ही, 'ग्रेजुअल ग्रोथ' ही है वह जो रोज बढ़ती हो रही मृत्यु की। वह एक दिन मरण बन जायेगा। हम यहाँ जितने लोग बैठे हैं, मर रहे हैं। घण्टे भर हम मर गये।

जो जीवन में आर-पार देखेगा, उसे अनेक बातें दिखाई पड़नी शुरू होंगी। जिज्ञासा मुक्त हो और अन्तर्दृष्टि की तलाश रहे और हम किसी चीज को जैसी वह दिखाई पड़ती हो, उसका चेहरा जैसा मालूम पड़ता हो, वैसा स्वीकार न कर लें, उसके भीतर प्रवेश करें और देखें, तब यह सारा जगत संन्यास का उपदेश बन जाता है। यह

सारा जगत परित्याग का उपदेश बन जाता है। यह सारा जगत धर्म का शिक्षालय हो जाता है और जो आर-पार देखने में समर्थ हो जाता है, जिसकी शिक्षा, जिसकी जीवन-शिक्षा और अनुशासन आर-पार देखने में समर्थ हो जाता है, वह व्यक्ति घटनाओं के पीछे, उसको देखने लगता है, जिससे कोई घटना नहीं घटती। वह व्यक्ति परिवर्तन के पीछे, उसको अनुभव करने लगता है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। वह व्यक्ति जड़ता के पीछे उसको देखने लगता है, जो चैतन्य है। उस व्यक्ति की जैसे-जैसे क्षमता गहरी होती जाती है, वह अनित्य के पीछे नित्य का और सामीप्य के पीछे दूरी का दर्शन करने लगता है। जब उसे सारे तथ्य के पीछे, वह शाश्वत मिल जाता है, वह सनातन मिल जाता है, जिसके पार देखना असंभव है, उस बिन्दु का नाम ईश्वर है।

जिसके पार देखा जा सकता है, उसका नाम संसार है और जिसके पार नहीं देखा जा सकता है, उसका नाम सत्य है। जहाँ तक हमारी दृष्टि प्रवेश कर सकती है, जहाँ तक दृष्टि की गति है, वहाँ तक संसार है। और जहाँ दृष्टि की अगति हो जाती है और दृष्टि आगे जा ही नहीं सकती, अंतिम क्षण आ जाता है, तब अंतिम बिन्दु आ जाता है, जिसके पार दृष्टि शून्य हो जाती है, जिसके पार देखने को कुछ रह नहीं जाता, उस जगह का नाम सत्य है, उस जगह का नाम परमात्मा है। उसे जो मंदिर में खोज रहा है, वह नासमझ है। मंदिर के तो पार देखा जा सकता है, वह तो संसार का हिस्सा है। जो उसे शास्त्र में खोज रहा है, वह नासमझ है। शास्त्र के तो पार देखा जा सकता है, शास्त्र तो पदार्थ का हिस्सा है। परमात्मा को तो वहाँ खोजना होगा, जिसके पार नहीं देखा जा सकता।

कौन-सी चीज है ऐसी, जिसके पार आप नहीं देख सकते ? अगर आप अपने भीतर प्रविष्ट होंगे, तो आपके सिवाय ऐसी कोई चीज

नहीं जिसके पार आप देख सकते हैं। हर चीज के पार देखा जा सकता है, सिवाय आपको छोड़ कर। जब आप भीतर प्रविष्ट होंगे तो आपको अपने ही भीतर एक बिन्दु उपलब्ध होगा, जिसके आर-पार कहीं नहीं देखा जा सकता। वह दृष्टा का बिन्दु है। जो देख रहा है, उसको ही केवल देखा नहीं जा सकता। जो देख रहा है, इस जगत में, उसको ही केवल देखा नहीं जा सकता। उस बिन्दु पर थिर होकर, व्यक्ति सत्य को अनुभव करता है, परमात्मा को अनुभव करता है और उस दिन जो प्रकाश उसमें उत्पन्न होता है, उस दिन जो अनुभूति उसे स्पष्ट होती है, उस दिन जो है, दिखाई पड़ता है, उस दिन जो प्रतीति में आता है, वह उसके सारे जीवन को बदल देता है। उसके बाद मृत्यु नहीं रह जाती, क्योंकि उसे जान कर वह जानता है कि अमृत है। उसके बाद कोई दुःख नहीं रह जाता, क्योंकि उसे जान कर वह जानता है कि सब आनन्द है। उसके बाद सारा जगत सच्चिदानन्द रूप में परिणत हो जाता है।

ऐसी परिणति को साहसी उपलब्ध होते हैं। ऐसी परिणति को दुर्दम्य साहसी उपलब्ध होते हैं, दुस्साहसी उपलब्ध होते हैं। जो सब छोड़ कर, अनन्त के सागर में अपनी नाव को खेते हैं, जो सारे खूँटे तोड़ कर, अज्ञात सागर में अपने को छोड़ देते हैं—अनजान, कहाँ जायेंगे, कुछ पता नहीं। जिन्हें तटों का मोह है, वे सत्य को नहीं पा सकते। जिन्हें मँझधार में डूब जाने का साहस है, जिन्हें किनारों का कोई मोह नहीं, जो मँझधार को ही किनारा मान सकते हैं, जो बीच सागर को भी सहारा मान सकते हैं, केवल उनके लिए ही सत्य की खोज है।

ईश्वर ऐसा साहस पैदा करे, ईश्वर ऐसी हिम्मत दे, ईश्वर ऐसा दुर्दम्य बोध, ऐसी अन्तर्दृष्टि, ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न करे, तो हम इस सारी दुनिया में, फिर से धर्म को प्रतिष्ठित करने में समर्थ हो जायेंगे।

जो धर्म वीरों का था, वह वृद्धों का बना हुआ है। जो धर्म साहसियों का था, वह आलसियों का बना हुआ है। जिस धर्म पर केवल वे ही चढ़ते थे, जो पर्वतों में अकेले अपने को खो देने का साहस रखते हैं, जिन्हें मृत्यु का कोई भय नहीं। लेकिन वह उनका बना हुआ है, जो मृत्यु से बहुत भयभीत हैं, बहुत डरे हुए हैं और धर्म में अपना बचाव खोजते हैं। धर्म कोई सुरक्षा नहीं है, धर्म कोई बचाव नहीं है। धर्म को इन अर्थों में शरण मत समझना। धर्म तो आक्रमण है। जो लोग आक्रमण करते हैं सत्य पर, जो उसे विजय करते हैं, वे ही केवल उसे उपलब्ध होते हैं।

ईश्वर ऐसी सद्‌बुद्धि दे, ऐसा साहस दे, ऐसी हिम्मत दे, कि अनन्त सागर में आप अपनी नाव को छोड़ सकें, तो किसी दिन, किसी क्षण, किसी सौभाग्य के क्षण में, कोई अनुभूति आपके जीवन को उपलब्ध होगी, जो आपको परिपूर्ण बदल देगी। जो आपकी सारी दृष्टि को बदल देगी। संसार तो यही होगा, लेकिन आप बदल जायेंगे। सब-कुछ यही होगा, लेकिन आप दूसरे हो जायेंगे।

उस दूसरे हो जाने का नाम संन्यासी है। संन्यासी का अर्थ यह नहीं है कि जिसने कपड़े बदले और भीख माँगने लगा, तो वह संन्यासी हो गया। या किसी ने टीका लगाया और किसी ने कपड़े रंग लिये, तो वह संन्यासी हो गया। और कोई घर में रहा तो वह गृहस्थ हो गया। संन्यासी का यह अर्थ नहीं है। सत्य के अनुसंधान में इतने साहस की लेकर जो कूद पड़ता है, वही संन्यासी है। और जिसके घरघूले हैं, और जिसके खूँटे हैं और जो अपने घर के बाहर नहीं निकलता, वही गृही है, वही गृहस्थ है। कोई पत्नी और बच्चों से दुनिया में गृहस्थ नहीं होता और न कोई पत्नी-बच्चों के न होने से संन्यासी होता है और न कोई कपड़ों के परिवर्तन से गृहस्थ होता है, न कोई संन्यासी होता है। अगर यह छोटी और औछी बातों से दुनिया में संन्यासी होता है, तो उसका मूल्य दो कौड़ी हो जायेगा।

उसका कोई मूल्य नहीं रह जायेगा। संन्यास तो बड़ी आंतरिक परिवर्तन की, इनर ट्रांसफर्मेशन की बात है और वह परिवर्तन आंतरिक जीवन की दिशा को बदलने से शुरू होता है।

उस दिशा के दो चरणों की मैंने आपसे बात की है—एक चरण है, जिज्ञासा को स्वतन्त्र और उन्मुक्त कर देना। आस्थाओं, श्रद्धाओं, के खूंटों से उसे अलग कर देना। और दूसरी बात है, तथ्यों के आर-पार देखना। जो तथ्यों के आर-पार देखता है, वही सत्य को उपलब्ध होता है।

इन थोड़ी-सी बातों को आपने बड़े प्रेम और बड़ी शांति से सुना है, उसके लिए मैं बहुत अनुगृहीत हूँ। ईश्वर की आप पर अनुकम्पा उपलब्ध हो, उसका प्रसाद आपको मिले, यह कामना करता हूँ और पुनः धन्यवाद देता हूँ। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●

२ : विसर्जन की कला

प्रश्न—आनन्द थोड़ी देर के लिए अनुभव होता है और फिर वह आनन्द चला जाता है। वह आनन्द और अधिक देर तक कैसे रहे ?

उत्तर—यह बहुत महत्त्वपूर्ण है पूछना, क्योंकि वे आज नहीं कल, जो लोग भी आनन्द की साधना में लगेंगे, उनके सामने यह प्रश्न खड़ा होगा। आनन्द एक झलक की भाँति उपलब्ध होता है—एक छोटी-सी झलक, जैसे किसी ने द्वार खोला हो और बन्द कर दिया हो। हम देख ही नहीं पाते उसके पार कि द्वार खुलता है और बन्द हो जाता है। तो वह आनन्द बजाय आनन्द देने के और पीड़ा का कारण बन जाता है। क्योंकि जो कुछ दीखता है, वह आकर्षित करता है, लेकिन द्वार बन्द हो जाता है। उसके बाबत चाह और भी घनी पैदा होती है, फिर द्वार खुलता नहीं। बल्कि फिर हम जितना उसे चाहने लगते हैं, उतना ही उससे वंचित हो जाते हैं।

अगर मैं किसी व्यक्ति से चाहूँ कि उसने इतना प्रेम दिया है, मुझे और प्रेम दे, तो जितना मैं चाहूँगा उतना मैं पाऊँगा कि प्रेम उससे आना कम हो गया। प्रेम उससे आना बन्द हो जायेगा। ये चीजें छीनी नहीं जा सकतीं, ये जबरदस्ती पजेस नहीं की जा सकतीं। जो आदमी इनको जितना कम चाहेगा, जितना शांत होगा, उतनी अधिक उसे उपलब्ध होंगी।

एक बहुत पुरानी कथा है—एक हिन्दू कथा है, कहानी काल्पनिक ही है। नारद एक गाँव के करीब से निकले। एक वृद्ध साधु

ने उनसे कहा कि तुम भगवान के पास जाओ, तो उनसे पूछ लेना कि मेरी मुक्ति कब तक होगी, मुझे मोक्ष कब तक मिलेगा ? मुझे साधना करते हुए बहुत समय बीत गया। नारद ने कहा, मैं जरूर पूछ लूंगा। वह आगे बढ़े, तो बरगद के दरख्त के नीचे एक नया-नया फकीर, जो उसी दिन फकीर हुआ था, तंबूरा लेकर नाच रहा था। नारद ने उससे मजाक में पूछा, तुमको भी पूछना है भगवान से कि कब तक तुम्हारी मुक्ति होगी ? वह कुछ बोला नहीं।

जब नारद वापस लौटे, उस वृद्ध फकीर से उन्होंने जाकर कहा, मैंने पूछा था, भगवान बोले कि अभी तीन जन्म और लग जायेंगे। वह अपनी माला फेरता था, उसने गुस्से में अपनी माला नीचे पटक दी। उसने कहा, तीन जन्म और ! यह तो बड़ा अन्याय है, यह तो हद हो गयी। नारद आगे बढ़ गये। वह फकीर नाच रहा था, उस वृक्ष के नीचे। उससे कहा, सुनते हैं, आपके बाबत भी पूछा था। लेकिन बड़े खेद की बात है, उन्होंने कहा कि वह जिस दरख्त के नीचे नाच रहा है, उसमें जितने पत्ते हैं, उतने जन्म उसे लग जायेंगे। वह फकीर बोला, तब तो पा लिया, और वापस नाचने लगा। वह बोला, तब तो पा लिया, क्योंकि दरख्त पर कितने पत्ते हैं, इतने पत्ते, इतने जन्म न— तब तो जीत ही लिया, पा ही लिया। वह पुनः नाचने लगा। और कहानी कहती है, वह उसी क्षण मुक्ति को उपलब्ध हो गया— उसी क्षण।

यह जो नानटेंश, यह जो रिलेक्स्ड माइण्ड है, जो कहता है कि पा ही लिया, इतने जन्मों के बाद की वजह से भी, जो परेशान नहीं है और जो इसको भी अनुग्रह मान रहा है प्रभु का, इसको भी उसका प्रसाद मान रहा है कि इतनी जल्दी मिल जायेगा, वह उसी क्षण सब पा लेता है। हमारे मन की दो स्थितियाँ हैं। एक टेंश स्थिति होती है। जब हम कुछ चाहते हैं कि मिल जाय। और दूसरी नानटेंश स्थिति

होती है, जब कि हम चुपचाप जो मिल रहा है, उसको रिसीव करते हैं, कुछ झपटते नहीं हैं। टेंश स्थिति एग्रेसिव होती है, वह झपटती है। नानटेंश स्थिति रिसेप्टिव है, वह छीनती नहीं, वह चुपचाप ग्रहण करती है। **ध्यान जो है, वह एग्रेसन नहीं है, रिसेप्शन है। वह आक्रमण नहीं है, वह आमंत्रण है। वह झपटता नहीं कुछ, जो आ जाता है, उसे स्वीकार कर लेता है।**

तो आनन्द के क्षणों को, शान्ति के क्षणों को झपटने की, पजेस करने की कोशिश न करें। वे ऐसी चीजें नहीं हैं कि पजेस की जा सकें। वह कोई फर्नीचर नहीं है, जो हम बस से उठा कर कमरे में रख लें। वह तो उस प्रकाश की तरह है कि द्वार हमने खोल दिया, बाहर सूरज ऊगेगा तो प्रकाश अपने-आप भीतर आयेगा। हमारे लिए, प्रकाश को बाँध कर, भीतर लाना नहीं पड़ता है। सिर्फ द्वार खोल कर प्रतीक्षा करनी होगी, वह आयेगा। वैसे ही मन को शांत करके, हम चुपचाप प्रतीक्षा करें, और जो मिल जाय, उसके लिए धन्यवाद करें, और जो नहीं मिला, उसका हिसाब न करें। तो आप पायेंगे कि रोज-रोज आनन्द बढ़ता चला जायेगा। बिना माँगे कोई चीज मिलती चली जायेगी, बिना माँगे कोई चीज गहरी होती चली जायेगी। और अगर माँगना शुरू किया, जबरदस्ती चाहना शुरू किया, तो पायेंगे कि जो मिलता था, वह भी मिलना बन्द हो गया।

समस्त साधकों के लिए, जो आत्मिक आनन्द की तलाशें चलती हैं, सबसे बड़े खतरे के क्षण तब आते हैं, जब उनको थोड़ा-थोड़ा आनन्द मिलने लगता है। बस, अक्सर वहीं रुकना हो जाता है। वह मिला कि उनका मन होता है, और मिल जाय। और जहाँ उनका मन यह हुआ कि और मिल जाय, वह जहाँ एग्रेसिव हुए पाने के लिए, वह जो मिलता है, उसके दरवाजे भी बन्द हो जायेंगे। तो इतना स्मरण रखें, जो मिलता है उसके लिए भगवान का धन्यवाद करें और जो नहीं

मिलता है, उसकी फिक्र न करें और अपने भीतर शान्त होने के प्रयास में संलग्न रहें। क्या मिलता है, इसकी चिन्ता छोड़ दें। हम क्या बन रहे हैं, शान्त कैसे बन रहे हैं, इसकी चिन्ता करें। जिस मात्रा में आप शान्त हो जायेंगे, उस मात्रा में आनन्द मिलना अनिवार्य है। उसकी फिक्र छोड़ दें। यानी इसकी बिलकुल फिक्र छोड़ दें कि क्या मिला; क्योंकि जो भी मिलने की आपकी क्षमता पैदा हो जायेगी, उसके आप हकदार हैं, वह आपको मिलेगा ही।

इसी सन्दर्भ में आपने पूछा है, लोग कहते हैं कि हम बुरा कर्म करते हैं तो बुरा परिणाम मिलेगा। अच्छा काम करेंगे, तो अच्छा परिणाम मिलेगा।

यह जो हम सोचते हैं, मिलेगा, फ्यूचर की भाषा में, यह गलत है। हमने बुरा काम किया, उसी क्षण बुरा हो गया। कुछ आगे नहीं मिलेगा। उसी क्षण, हमारे भीतर कुछ बुरा हो गया। हमने कुछ भला किया, उसी क्षण हमारे भीतर कुछ भला हो गया। हम अपने को कांस्टेंटली क्रियेट कर रहे हैं, हमारा प्रत्येक कर्म हमको बना रहा है। बनायेगा नहीं, इसी क्षण बना रहा है। हम अगर ठीक से, जिसको जीवन कहते हैं वह जीवन ही नहीं है, वह एक सेल्फ क्रियेशन भी है। वह जो हम कर रहे हैं, उससे हम बन रहे हैं। हमारे भीतर कुछ बन रहा है, कुछ घना हो रहा है। कुछ अपने ही भीतर हम अपने चैतन्य का निर्माण कर रहे हैं। तो हम जो-जो कर रहे हैं, ठीक उसके अनुकूल या उसके जैसा हमारे भीतर कुछ बनता चला जा रहा है।

लोग कहते हैं कि आप नरक में चले जायेंगे या स्वर्ग में चले जायेंगे। कुछ इस तरह की बात करते हैं कि स्वर्ग और नरक, भूगोल में, जाग्रफी में कहीं होंगे। लोग जिस तरह की बात करते हैं, मैं ऐसी बात नहीं करता। नरक और स्वर्ग जाग्रफी में नहीं हैं, साइकोलाजी में हैं। वह भौगोलिक धारणा नहीं है, मानसिक धारणाएँ हैं। जब आप बुरा करते

हैं, उसी क्षण नरक में चले जाते हैं। मैं अपनी धारणा आपसे कह रहा हूँ—जब मैं क्रोध करता हूँ, तो मैं उत्तप्त हो जाता हूँ और अग्नि की लपटों में अपने-आप चला जाता हूँ, उसी वक्त।

तो नरक में आप चले जायेंगे, ऐसा नहीं है, या स्वर्ग में कभी आप चले जायेंगे, ऐसा नहीं है। चौबीस घण्टों में आप अनेक बार नरक में होते हैं और अनेक बार स्वर्ग में होते हैं। जब-जब आप क्रोध से भरते हैं, उत्ताप और तीव्र वासना से भरते हैं, तब-तब आप अपने भीतर नरक को आमंत्रित कर लेते हैं। तो लोग कहते हैं, आप नरक में चले जायेंगे या स्वर्ग में चले जायेंगे—मेरा मानना ऐसा है कि आप में नरक और स्वर्ग, अनेक बार आ जाता है। वह आपकी मानसिक घटना है। कहीं जमीन फोड़ कर नीचे नरक नहीं मिलेगा। और कहीं आकाश में खोजने से, कहीं कोई स्वर्ग नहीं मिल जायेगा।

और आप हैरान होंगे कि सारी दुनिया के लोगों की, स्वर्ग-नरक की धारणाएँ भिन्न-भिन्न बनीं है, क्योंकि वह तो साइकोलाजिकली है। तिब्बत है—तिब्बत में जो नरक है, उनकी जो कल्पना है नरक की, वह बड़े ठण्ढे स्थान की है। क्योंकि तिब्बत में ठण्ढक बहुत कष्टप्रद है। ठण्डक से कष्टप्रद, तिब्बत में कुछ भी नहीं है। तो तिब्बत की जो कल्पना है नरक की, कि जो पापी होंगे, वह ऐसे स्थान में जायेंगे, जहाँ इतनी ठण्डक है कि उनकी मुसीबत हो जायेगी। इस ठण्डक से बड़ी मुसीबत नहीं है कोई।

हमारे मुल्क की जो कल्पना है नरक की, वह अग्नि की लपटों वाली है। वहाँ ठण्डक नहीं है। नहीं तो, हमको तो वह हिल-स्टेशन साबित होगा। तो हमारे मुल्क में हम सोचते हैं, जो नरक है, वहाँ अग्नि की लपटें उठ रही हैं, उसमें डाला जायेगा और कड़ाहियाँ गर्म हो रही हैं तेल की, उनमें पटका जायेगा। वे हमारी कल्पनाएँ हैं, क्योंकि गर्मी हमें कष्ट देती है, तो हम सोचते हैं कि पापी को कष्ट देने के लिए तो

गर्म जगह होगी। तो नरक तिब्बत में ठण्डी जगह है और भारत में गर्म जगह है। नरक ऐसा नहीं हो सकता है, या उसमें ऐसे खण्ड नहीं हो सकते कि वहाँ ठण्ढा ही नरक है।

तो असल में, यह हमारी कष्ट की जो कल्पनाएँ हैं, उनको हम इस भाँति कल्पित कर लेते हैं। कष्ट मानसिक घटना है, भौगोलिक घटना नहीं है। अभी भी आप जब बुरा करते हैं, तो आपके भीतर अत्यन्त कष्टप्रद स्थितियों का निर्माण होता है। अभी कभी-कभी होता है, अगर आप निरन्तर बुरा करते जायेंगे, तो वह सतत होने लगेगा, और करते चले जायेंगे, तो एक घड़ी ऐसी आ सकती है कि आप चौबीस घण्टे नरक में होंगे। तो आदमी—आम आदमी कभी नरक में होता है, कभी स्वर्ग में होता है। फिर बहुत बुरा आदमी, अधिकतर नरक में रहने लगता है, बिलकुल बुरा आदमी, चौबीस घण्टे नरक में रहने लगता है। भला आदमी, स्वर्ग में रहने लगता है, और भला आदमी और स्वर्ग में रहने लगता है, बिलकुल भला आदमी, बिलकुल स्वर्ग में रहने लगता है। जो भले और बुरे दोनों से मुक्त है, वह आदमी मोक्ष में रहने लगता है। मोक्ष में रहने का मतलब है आनन्द। कोई स्थान नहीं है, कहीं स्पेस में खोजने पर, यह जगह नहीं मिलेंगी कि यह रहा स्वर्ग और यह रहा नरक। इसलिए मनुष्य की जो साइकोलाजी है, उसका जो मानसिक जगत है, उसके विभाजन हैं। तो मानसिक जगत के तीन विभाजन हैं—नरक, स्वर्ग और मोक्ष। नरक से जैसा आज सुबह मैंने कहा, दुःख; स्वर्ग से जैसा मैंने आज सुबह कहा सुख; और मोक्ष से मेरा मतलब है न सुख, न दुःख, वह जो आनन्द है।

तो, यह मत सोचिये कि कल कभी ऐसा होगा कि हम बुरा करेंगे, तो उसका बुरा फल होगा। यह मत सोचिये कि हम भला करेंगे, तो भला फल होगा। जो भी हम कर रहे हैं, साइमलटेनिअसली,

उसी वक्त। क्योंकि यह हो ही नहीं सकता कि अभी क्रोध करूँ और अगले जन्म में मुझे उसका फल मिले, यह बड़ी ब्लफ हो जायेगी, यह बात फिजूल हो जायेगी। क्योंकि उतनी देर क्या होगा? मैं अभी क्रोध करूँ, अगले जन्म में मुझे फल मिले, यह बात बड़ी फिजूल हो जायेगी। इतनी देर क्यों होगी? मैं जब क्रोध कर रहा हूँ, क्रोध के करते ही, क्रोध का फल भोग रहा हूँ। क्रोध से बाहर, क्रोध का फल नहीं है। क्रोध ही मुझे वह पीड़ा दे रहा है, जो क्रोध का फल है। और जब मैं अक्रोध कर रहा हूँ, तो मुझे उसी क्षण फल मिल रहा है, क्योंकि अक्रोध का जो आनन्द है, वही उसका फल है। जब मैं किसी की हत्या करने जा रहा हूँ, तो हत्या करने में ही मैं कष्ट भोग रहा हूँ, जो कि हत्या करने का है और जब मैं किसी की जान बचा रहा हूँ, तो जान बचाने में ही, मुझे वह सुख मिल रहा है, जो कि उसमें छिपा है।

मेरी बात आप समझ रहे हैं न? कर्म ही फल है, कर्म का कोई फल नहीं होता, कभी भविष्य में नहीं। कर्म—प्रत्येक कर्म का अपना फल स्वयं है। तो बुरा कर्म, मैं उसको नहीं कहता, जिसके बाद में बुरे फल मिलेंगे। बुरा कर्म मैं उसको कहता हूँ, जिसका बुरा फल उसी क्षण मिल रहा है। फल को जाँच कर ही अनुभव कर लेना कि कर्म बुरा है या भला। जो कर्म अपने क्रिया के भीतर ही दुःख दे वही बुरा है।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—उसी क्षण हो रहा है, फर्क इतना है। आप कितने ही हैबीच्युअल हो जाएँ—आप कितने ही हैबीच्युअल हो जाएँ। जैसे समझ लीजिये, एक आदमी को निरन्तर क्रोध करने की आदत हो जाय उसे, तो क्या आप सोचते हैं, क्रोध उसे पीड़ा नहीं देगा? उसे तो और भी पीड़ा देगा। आप ऐसा समझिये, आपमें से कुछ लोग कभी-कभी क्रुद्ध होते हैं, फिर कुछ क्रुद्ध रहने ही लगते हैं। इतनी आदत हो जाती है कि वे चौबीस घण्टे क्रुद्ध रहते हैं। और वे मौके की तलाश

में रहते हैं कि कभी आप कुछ मौका दें, और वे क्रोध जाहिर कर दें। वे क्रुद्ध हैं। वे चढ़े हुए हैं, क्रोध में। वे घूम रहे हैं चारों तरफ कि आप मौका दें, वह क्रोध को जाहिर करें। बाकी वे क्रुद्ध हैं, उनके चेहरे के भीतर उनकी पीड़ा आप अनुभव कर सकते हैं। बड़ी पीड़ा तो यह है कि वह सारे सुख और शांति के सब क्षणों से वंचित हो गये। क्योंकि जो निरन्तर, चौबीस घण्टे भीतर क्रुद्ध है, वह किसी शांति के क्षण को कभी अनुभव नहीं करेगा। वह किसी प्रेम के क्षण को कभी अनुभव नहीं करेगा, वह किसी आनन्द के क्षण को कभी अनुभव नहीं करेगा। वह सब द्वार तो उसने अपने क्रोध से ही बन्द कर लिये। वह जो टेंशन चल रहा है, चौबीस घण्टे क्रोध का, उसने सारे महत्त्वपूर्ण क्षणों को बन्द कर दिया। बड़ा दण्ड तो उसे यह मिल गया और फिर क्रोध की जो अग्नि है, वह अलग उत्ताप दे रही है उसे। उसके शरीर को भी कष्ट दे रही है, उसके मन को भी कष्ट दे रही है और निरन्तर उसे नीचे ले जाती चली जायेगी।

दो तरह के एमोशंस हैं—निगेटिव और पॉजिटिव। एमोशंस हैं, जैसे क्रोध है, घृणा है। इनसे आपको तत्क्षण नुकसान हो जाता है। आगे नहीं कभी, उसी वक्त आपमें से कुछ खो जाता है, आप खण्डित हो जाते हैं, आप नीचे हो जाते हैं। आप कभी अनुभव करें। क्रोध के बाद, एक क्षण विचार कर अनुभव करें कि क्या हुआ? आप पायेंगे कि आप ऊँचे तल पर थे, नीचे आ गये। आप कहीं शांति में थे, वह शांति गयी, आप बड़ी अशांति में आ गये। आप पायेंगे, कुछ अगर ताजगी थी भीतर, वह ताजगी खो गयी, सब बासी-बासी हो गया। आपमें अगर कोई शक्ति अनुभव होती थी, वह शक्ति चली गयी और आप बहुत थके-थके मालूम हो रहे हैं। जो-जो चित्त की प्रक्रियाएँ आपको थकान लाती हों, कष्ट लाती हों, उदासी लाती हों, नीचे उतर जाने का भाव लाती हों, अशांति लाती हों, वह सब

निगेटिव हैं। पॉजिटिव नहीं हैं कि जिनको करने के बाद आप अनुभव करते हैं कि आप और ताजा हो गये। जिनको करने के बाद आप अनुभव करते हैं कि और शक्ति अनुभव हो रही है, जिनको करने के बाद आपको अनुभव होता है कि शांति घनी हो गयी, जिनको करके आपको अनुभव होता है कि आपने दो सीढ़ियाँ अपने आंतरिक जीवन में ऊपर चढ़ी हैं। यह निरन्तर आपको अनुभव होगा। दोनों तरह के काम आप कर रहे हैं और दोनों तरह के काम का, हरएक को अनुभव है।

तो, मेरी जो धारणा है, कोई कर्म भविष्य में फल नहीं लाता। कर्म ही फल है, उसी क्षण। कोई हिसाब-किताब कौन रखेगा? इससे मतलब क्या है? यह सब फिजूल का पागलपन का ख्याल है कि कोई हिसाब-किताब रखेगा और फिर आपको नरक भेजेगा या स्वर्ग भेजेगा।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—कोई हिसाब नहीं, अपनी धारणा मैं आपसे कहता हूँ। एक-एक कर्म हमने किया, करने में ही हमने इसे भोग लिया। तो बुरा कर्म नरक में नहीं ले जायेगा, बुरा कर्म नरक है। भला कर्म स्वर्ग में नहीं ले जायेगा, भला कर्म स्वर्ग है। और वह तीसरी स्थिति की जो मैंने बात कही, जो कि कर्म के बाहर है, वह आनन्द है, वह मोक्ष है। न वहाँ शुभ कर्म है, न वहाँ अशुभ कर्म है। न वहाँ क्रोध है, न क्रोध को क्षमा करना है। वहाँ वह कुछ भी नहीं है। वहाँ वह दोनों बातें नहीं हैं—वहाँ परम शान्ति है।

आपने पूछा, क्रोध को हम क्या करें? वह जो हममें उठता है, वह जो हममें घना होता है, उसको क्या करें?

हम दो ही काम करते हैं। क्रोध उठने पर हम दो ही काम करते हैं। एक काम तो हम रोज करते हैं कि जैसे ही क्रोध उठता है, हम उसे किसी को बिन्दु बना कर निकालते हैं। तो मुझे क्रोध उठा, तो मैं किसी को बिन्दु बनाऊँगा और निकालूँगा। एक तो यह है। दूसरा

काम यह है कि जब क्रोध उठता है, तब मैं किसी को बिन्दु नहीं बनाता, अपने को ही बिन्दु बनाता हूँ और उसे दबा लेता हूँ। मतलब दो हैं, या तो मैं उसे निकालता हूँ या दबा लेता हूँ।

दोनों स्थितियों में भारी गलती हो जाती है कि जब मैं किसी पर उसे निकालता हूँ, जब मैं उस वेग को किसी पर निकालता हूँ, तो मुझे उसे निकालने की आदत पड़ जाती है। यानी कल मैं उसे और जल्दी निकालूँगा, परसों फिर और जल्दी निकालूँगा, एक दिन ऐसी हालत आयेगी कि मैं उसे बिना कारण निकालने लगूँगा। एक दिन ऐसी हालत आयेगी कि मुझे इससे मतलब ही नहीं रहेगा कि इसमें कुछ सम्बन्ध भी था कि मैं निकालूँगा। हम चौबीस घण्टे जो क्रोध करते हैं, उसमें अनेक बार उन लोगों पर क्रोध कर रहे होते हैं, जिनका कोई सम्बन्ध नहीं था।

अक्सर हम उन लोगों का क्रोध, जिनका सम्बन्ध था, उन पर भी निकालते हैं जिनका उससे कोई सम्बन्ध नहीं था। हो सकता है, आप दूकान पर किसी से क्रुद्ध हुए हों और नहीं निकाल सकते, घर में बच्चे पर निकाल सकते हैं, पत्नी पर निकाल सकते हैं। फिर क्रोध कहीं भी निकलने लगेगा, फिर वह धीरे-धीरे बिलकुल रेशनल हो जायेगा। उसमें यह फिक्र नहीं रहेगी कि इसने कुछ किया है या नहीं।

आप हैरान होंगे कि आप चीजों तक पर क्रोध निकाल लेते हैं। दरवाजा नहीं खुलता है, तो उसको जोर से धक्का देते हैं, गाली भी देते हैं। और कभी-कभी सोचने की बात है कि दरवाजे को गाली देनी या दरवाजे को धक्का देना, कौन-सी अक्ल की बात हो सकेगी! मैं लोगों को देखता हूँ, कलम स्याही नहीं फेंक रही है, तो गाली देकर उसे पटक देते हैं। मैं बड़ा हैरान होता हूँ। इस कलम पर भी उनका क्रोध निकल रहा है। बिलकुल ही इस क्रोध से कोई मतलब नहीं। तो जो आदमी कलम पर क्रोध निकाल रहा है, उसके क्रोध से क्या

घबड़ाना। मतलब वह आपसे भी ऐसे ही निकाल रहा है, इससे कोई मतलब थोड़े ही है। उसके लिए तो मुद्दा चाहिए, कहीं भी निकाल रहा है।

जापान में एक साधु हुआ, उससे एक जर्मन विचारक मिलने गया था। जब वह उससे मिलने गया, तो वह एक आदमी से कह रहा था कि जाकर जूते से क्षमा माँग कर आओ। तुमने जूते गुस्से में निकाले हैं। जर्मन विचारक बड़ा हैरान हुआ कि यह क्या पागलपन हो रहा है! वह उससे कह रहा है कि तुम जूते से क्षमा माँग कर आओ और वह आदमी पागल, गया भी। वह तो बड़ा हैरान हुआ कि यह क्या करवा रहा है। वह आदमी गया, उसने जूते से जाकर क्षमा माँगी कि महानुभाव क्षमा करिये। तो उसने साधु से पूछा, मैंने सुना था कि पूरब के साधु बड़े पागल होते हैं। यह क्या पागलपन है कि जूते से क्षमा मँगवाते हैं?

वह बोला कि इस आदमी ने जूता क्रोध में उतारा। अगर आप जूते को क्रोध में उतारने के योग्य मानते हैं, तो फिर क्षमा योग्य मानना चाहिए। उसने जूते को ऐसे उतारा, जैसे कि वह उस पर क्रोध कर रहा है। उस आदमी ने कहा, हाँ, मैंने क्रोध किया। मैं क्रुद्ध तो किसी और बात से था। जूते ने जरा देर की उतरने में, इसलिए मैंने उसे गुस्से से उतारा था। अब इस साधु ने मुझसे क्षमा मँगवायी है जूते से कि तू क्षमा माँग कर आ, तो ही अन्दर आ, नहीं तो क्या फायदा, अन्दर आने में?

हम अनुभव करें अगर, तो हम पायेंगे कि क्रोध निकास लेता है। जो उसे निकालने की निरन्तर आदत में पड़ जायेगा, वह धीरे-धीरे उसे निकालता रहेगा। और जितना क्रोध निकालेगा, उतनी आत्मा शक्ति-हीन होती चली जायेगी। तो, क्रोध को निकालने का रास्ता तो गलत है, क्योंकि उससे क्रोध और घना होगा।

और एक रास्ता यह है कि क्रोध का दमन करो। जो भी लोग क्रोध से बचना चाहते हैं, फिर वह दूसरे रास्ते का उपयोग करते हैं। जब क्रोध आये, तो ऊपर तो मुस्कुराहट कायम रखो और क्रोध को भीतर दबा लो। हममें से अधिकांश लोग यह करते हैं, अनेक कारणों से। कुछ लोग करते हैं, धार्मिक वजह से कि क्रोध करना बुरा है, इससे नरक में जाना पड़ेगा। कुछ लोग शिष्टाचार के वश कि कैसे क्रोध करें! कुछ लोग, कुछ सामाजिक संबंधों के कारण कि कैसे क्रोध करें! कुछ इसलिए कि मालिक के साथ नौकर कैसे क्रोध करे? तो हम अपने को दबाते हैं, दमन करते हैं। और रिप्रेशन करते हैं।

जब आप क्रोध को दबाते हैं, तब भी आप नुकसान कर रहे हैं, क्योंकि दमित क्रोध जायेगा कहाँ? वह भीतर घूमेगा। वह काँशस-माइण्ड से दब जायेगा, तो अनकाँशस-माइण्ड में घूमेगा। आप ऐसे सपने देखेंगे, जिसमें आपने किसी की हत्या कर दी। आप मन ही मन में ऐसी कल्पना करेंगे कि उसके मकान में आग लगा दी या उसको जूते मार रहे हैं या कुछ कर रहे हैं। मन ही मन चलेगा यह। यह आपके भीतर सरकेगा और चित्त को विकृत करेगा और घुन लगा देगा। यह भी क्रोध है, वह आंतरिक दमन हुआ, वह चल रहा है भीतर।

पहले से नुकसान था कि आदत पड़ती गयी, इससे नुकसान यह है कि आप धीरे-धीरे क्रोध से उत्तप्त रहने लगें। उससे वेग निकलेंगे नहीं, वह वेग भीतर घुमड़ेंगे। ऐसा आदमी बड़ा घातक है। वह कभी इतना खतरनाक क्रोध करेगा, जो कि पहले वाला आदमी कभी नहीं कर सकता। इसलिए बहुत दफे, बहुत सीधे-साधे दीखने वाले लोग हत्याएँ कर देते हैं। आम तौर से बहुत क्रोधी लोग हत्या नहीं करते, क्योंकि उनका रोज-रोज क्रोध निकलता है। लेकिन जो क्रोध का दमन करता चला जायेगा, कई दफे यह अनुभव होगा कि यह आदमी तो बड़ा सीधा था, उसने यह काम कैसे किया? उसने बहुत दिन

दमन किया। वेग बहुत इकट्ठा हो गया। फिर किसी चीज से वह क्रुद्ध हो गया और सारा वेग इकट्ठा निकल गया और तब वह बहुत खतरनाक काम कर सकता है। यह वेग किसी दिन निकल सकता है। ऐसा आदमी पागल हो सकता है। यह वेग इतना ज्यादा दमित हो जाय कि इसके निकलने का रास्ता न रहे, तो दिमाग खराब हो जायेगा।

कोई भी वासना, कोई भी वेग किया जाय, तो आदत बनती **है, दमन किया जाय, तो विक्षिप्त** कर सकता है। तो दूसरा भी रास्ता रास्ता नहीं है। तो, न तो मैं क्रोध निकालने को कहता हूँ, न ही दबाने को कहता हूँ। मैं तीसरी बात कहता हूँ। मैं उसका विसर्जन करने को कहता हूँ। एक है क्रोध का भोगना, एक है क्रोध का दमन करना और एक है क्रोध का विसर्जन करना। विसर्जन करने की बात समझने की बात है।

जब क्रोध उठे, तो न तो उसे किसी पर प्रकट करिये। क्योंकि आपमें क्रोध उठा, इसके लिए कोई दूसरा जिम्मेवार नहीं है। आप ही जिम्मेवार हैं, इसको स्मरण रखिये। हम आम तौर से बोझ दूसरे पर टाल देते हैं कि मुझे इसलिए क्रोध उठा कि उस आदमी ने गाली दी। लेकिन **किसी की गाली, मुझमें क्रोध को नहीं उठा सकती, अगर मुझमें क्रोध न हो। मेरे भीतर जो है, उसी को कोई दूसरा मुझमें उठा सकता है।** यहाँ हम पर्दा खोलें, यहाँ इतने लोग बैठे दिखाई पड़ रहे हैं, तो पर्दा खोलने वाला, इतने लोगों को पर्दा थोड़े ही कर रहा है। वह पर्दा खोल भर रहा है। यहाँ इतने लोग दिखाई पड़ते हैं। ये यहाँ मौजूद हैं। जब एक आदमी आपको गाली देता है, तो आपमें क्रोध थोड़े ही पैदा करता है, आपके भीतर पर्दा खोलता है, क्रोध आपके भीतर मौजूद है। अगर वहाँ क्रोध मौजूद न हो, तो गाली क्रोध नहीं ला सकती।

मेरी बात समझे न, वहाँ क्रोध मौजूद है, इसलिए गाली क्रोध लाती है। वहाँ अभिमान मौजूद है, इसलिए सम्मान सुख लाता है। एक आदमी आपका बड़ा आदर करता है, आप बड़े सुखी हो गये। आप सोचते हैं, सुख उसने दिया! वहाँ तो अभिमान मौजूद था, उसने पर्दा भर खोल दिया, सम्मान करके। वहाँ बड़ा अच्छा लगने लगा। उसने गाली दे दी, तो अपमान हो गया। वहाँ अभिमान तो मौजूद था, आप क्रुद्ध हो गये।

आपके भीतर चीजें मौजूद हैं, बाहर के लोग केवल जो मौजूद हैं, उसी को प्रकट करने का कारण बन सकते हैं। आपके भीतर कोई भी, कुछ भी पैदा, नहीं कर सकता है। इसे स्मरण रखें कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति में, कुछ भी पैदा नहीं कर सकता है। सिर्फ जो उसमें मौजूद है, उसको दिखला सकता है। दूसरे पर तो, क्रोध को कभी कारण न मानिये कि दूसरे ने क्रोध करवा दिया है। फिर इस-लिए दूसरे के चिन्तन का तो सवाल ही नहीं रहता।

और फिर मैंने परसों रात, जैसा आपसे कहा कि जब-जब आप उसका चिन्तन करने लगेंगे, तब-तब क्रोध को आप देख नहीं पायेंगे। आप उसको देखने लगे, जिसने गाली दी। मैं उसका विचार करने लगा। उसी बीच क्रोध मुझे पकड़ लेगा और मथ डालेगा। उसी बीच मैं नरक में उतर जाऊँगा। तो जब उसने गाली दी, तब उसकी तो फिक्र छोड़ें, आँख बन्द करके अपने क्रोध को देखें। तो एक रास्ता निकालने का था, वह तो उपयोग का नहीं है। दूसरा रास्ता दमन करने का था, वह भी उपयोग का नहीं। तीसरा रास्ता है, न तो निकालें और न दमन करें। आँख बन्द कर लें। क्रोध का साक्षात्कार करें। उसके साक्षी बनें, उसके विटनेस बनें। उसको देखें, सिर्फ देखें। उसे पूरा उठने दें। उससे कह दें, उठो, हम तुम्हें देखते हैं, तुम क्या हो! न तो हम निकालेंगे, न हम दमन करेंगे, हम तुम्हें देखेंगे।

एकांत कोने में बन्द हो जायँ, साधना का बड़ा अद्‌भुत क्षण है। क्रोध पकड़े, साधना के लिए अद्‌भुत क्षण समझें। मंदिर जाने से वह लाभ न होगा, जो क्रोध में आ जाने से हो सकता है। दरवाजा बन्द कर दें, एकांत में शान्त होकर बैठ जायँ, आँख बन्द कर लें और कृपा समझें, उस आदमी की, जिसने इस क्रोध को देखने का आपको मौका दिया, जो आपके भीतर था। इस नरक का आपको मौका दिया। आँख बन्द कर लें, अब इस पूरे क्रोध को उठने दें और चुपचाप इसे देखें। इसे कुछ न करें, इसे छेड़ें-छाड़ें नहीं। ए जस्ट अवेयरनेस भर इसके बाबत पैदा करें कि देख रहे हैं हम उसे। उसे उठने दें, उसके पूरे रूप को फैलने दें, चुपचाप देखते रहें। न तो उसे किसी पर अभी निकालने की कोशिश करें और न दबाने की।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—शांत—अपने को बन्द कर लें, कहीं चुपचाप, और जो उठता है उसे देखें। सिर्फ देखें, कुछ न करें। एक क्षण को उठेगा, उसको ही देखें, कोई फिक्र नहीं है। आप गलत ख्याल में हैं कि क्रोध एक क्षण को उठता है। उसका उभार बड़ी देर तक रहता है। उठता है, एक क्षण को होगा। उसकी सरकती धुएँ की रेखा बहुत देर तक चलती है। कोई फिक्र नहीं है, अगर वह अपनी पूरी जवानी में न दिखाई पड़े। बुढ़ापे में दिखाई पड़े, तो भी कोई हर्ज नहीं। उसकी अन्तिम लकीर भी दिखाई पड़े, तो भी कोई हर्ज नहीं। देखने का प्रयोग शुरू करें। देखने का अभ्यास घना होगा, तो किसी दिन वह बिलकुल अपने जन्म में भी पकड़ा जा सकेगा। अभी तो ऐसा ही होगा कि वह आखिरी लकीर उसकी दिखाई पड़ेगी।

अभी तो ऐसा होगा कि क्रोध करने की जो पुरानी आदतें हैं, उसमें अगर बैठें भी एकान्त निरीक्षण को, तो उसकी आखिरी जाती हुई लकीर दिखाई पड़ेगी। कोई हर्ज नहीं, पर वह भी शुरूआत

अच्छी है । कुछ तो दीखा, और कुछ दीखेगा, और कुछ दीखेगा, किसी दिन पूरा क्रोध आपको दिखाई पड़ेगा । और एक बड़ा अद्भुत अनुभव होगा । वह, उसका अभ्यास थोड़ा घना हो जायेगा और आप क्रोध को देखने में समर्थ हो जायेंगे, तो आप देखेंगे कि न तो क्रोध किसी के ऊपर जा रहा है और न दमित हो रहा है । वह विर्सजित हो रहा है, एवोपरेट हो रहा है । न तो किसी की ओर जा रहा है, किसी आदमी के प्रति अब नहीं है वह और न अपने भीतर दमन हो रहा है । वह तो भाप की तरह, जैसे भाप उड़ती जा रही है, वह वैसा उठ रहा है और निकलता जा रहा है । वह क्रोध उठता हुआ, निकलता हुआ माछूम होगा । किसी व्यक्ति के प्रति नहीं ।

वह विलीन होता हुआ मालूम होगा, वाष्पीभूत होता हुआ मालूम होगा और इतनी परम शान्ति का अनुभव होगा, उसके वाष्पीभूत होने पर कि जिसकी आप कल्पना नहीं कर सकते । जो क्रोध आपको नरक में ले जाता है, वही क्रोध आपको स्वर्ग में ले जाता है । उसका दमन करते हैं, तो नरक में जाते हैं, उसको किसी पर प्रकट करते हैं, तो नरक में जाते हैं । उसे कुछ भी नहीं करते, इन दोनों में से कुछ भी नहीं करते—न दमन करते हैं, न प्रकट करते हैं । उसके साक्षी बनते हैं, उसका आब्जर्वेशन करते हैं । उसको देखते हैं कि यह क्या है वेग ।

और, जो मैं क्रोध के सम्बन्ध में कह रहा हूँ, वह अन्य शक्तियों के सम्बन्ध में ठीक है । सेक्स हो, लोभ हो या कुछ और हो, जो भी वेग पड़ते हों चित्त को, उनके निरीक्षक बनें । उन पर सेल्फ ऑब्जर्वेशन शुरू करें । ऑब्जर्वेशन में और थिंकिंग में फर्क समझ लें । क्रोध को विचारने को नहीं कह रहा हूँ कि आप विचार करें कि क्रोध क्या है । पुराने ग्रन्थों में क्या लिखा है, क्रोध के बाबत, वह मैं नहीं कह रहा । उसमें तो फिर आप निरीक्षण नहीं कर पायेंगे । क्रोध के सम्बन्ध में सोचने को नहीं कह रहा हूँ, क्रोध को देखने को कह रहा हूँ ।

यह मत सोचिये कि क्रोध बड़ी बुरी चीज है और फलाँ ने कहा है कि क्रोध नहीं करना चाहिए । यह मैं नहीं कह रहा आपसे । यह तो सोचना होगा । क्रोध को देखने को कह रहा हूँ । अन्तर्दृष्टा बनें, उसको देखें । आँख गड़ायें उसके ऊपर और जानें कि यह क्या है । कोई निर्णय न लें । वही मैं परसों कहता था । उसके बाबत निर्णय न लें कि वह अच्छा है कि बुरा है । इतना ही जानें, कि कुछ है जिसे हम देखें कि क्या है । आप हैरान हो जायेंगे, अगर ऐसा निरीक्षण किया । तो पहले निरीक्षण में आपको एक अद्भुत बात मालूम पड़ेगी कि जितना हिस्सा आप क्रोध का निरीक्षण कर लेंगे, उतना हिस्सा विलीन हो जायेगा । वह आपके भीतर सरकेगा नहीं । देख लेने के बाद, विलीन हो जाने के बाद, वह आपका पीछा नहीं करेगा, जो अभी करता है ।

अभी मैंने ऐसा अनुभव भी किया, ऐसे लोग भी हैं, जिनका पीछा बीस साल पहले का क्रोध भी कर रहा है । ऐसे भी लोग हैं कि उनके बाप को किसी ने क्रोधित किया था, वह उनका पीछा कर रहा है, जन्म से । यानी पुश्तैनी दुश्मनी भी चलती है कि हमारे बाप से उनका झगड़ा था । वह अभी भी चल रहा है । वह क्रोध अभी उनका पीछा कर रहा है । अजीब सी बात है, और आपका भी क्रोध पीछा करता है वर्षों तक । उस आदमी को देख कर आप फिर उत्तप्त हो जाते हैं, वह जो रखा है भीतर । यानी दो वर्ष पहले आपको गुस्सा दिलाया था, वह आदमी कहीं दिखाई पड़ जाय और आप पायेंगे, आपके भीतर फिर से कोई चीज जग गयी, कोई साँप भीतर उठ खड़ा हुआ है और परेशान कर रहा है ।

तो जितना आप निरीक्षण कर लेंगे, उतने से आप बाहर हो जाएँगे, वह आपका पीछा नहीं करेगा । जितना क्रोध की पूरी घटना का निरीक्षण करने में समर्थ हो जाएँगे, उतना आप पाएँगे,

क्रोध गया। थोड़े दिन निरीक्षण करने पर, क्रोध विलीन हो जायेगा। इसके बाद क्रोध आना कठिन हो जायेगा, जब निरीक्षण परिपूर्ण हो जायेगा। ऑब्जर्वेशन पूरा हो जायेगा तो क्रोध आना मुश्किल हो जायेगा, क्योंकि इसके पहले वह आये और आप ऑब्जर्वेशन में लग जाएँगे। अभी मैंने कहा, वह जाता होगा उसका आखिरी हिस्सा, आपको दिखाई पड़ेगा। निरन्तर अभ्यास से, वह आने के पहले, आपको दीखने की घटना शुरू हो जायेगी। किसी ने गाली दी, वह गाली दे रहा है और आप देखने लगेंगे भीतर, कहाँ है? उठता है कि नहीं? और आप हैरान हो जाएँगे, अगर उसके पहले ही निरीक्षण की क्षमता आ जाय। वह आयेगा ही नहीं, वह पहले नहीं होगा।

निरीक्षण क्रोध की मृत्यु है। पूर्ण निरीक्षण क्रोध का जन्म ही नहीं होना है, वह जन्म ही नहीं होगा उसका। तब उस निरीक्षण के माध्यम से जब क्रोध का जन्म नहीं होगा, तो जो आत्मचित्त की स्थिति होगी, उसका नाम अक्रोध है। वह क्रोध को दबाने से नहीं आती, क्रोध को निकालने से नहीं आती, क्रोध के विसर्जन से आती है।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—नहीं, उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। माफी माँगें, नहीं माँगें, वह मैं नहीं कह रहा, वह निकलती हो, जरूर माँग लें। नहीं निकलती हो, शिष्टाचार के लिए माँगना हो, उसको भी नहीं कह रहा। मैं यह कह रहा हूँ कि माफी क्रोध को नहीं मिटाती, क्रोध के परिणाम को फीका करती है। मैंने आपको क्रोध में गाली दे दी और मैंने जाकर आपसे माफी माँग ली। मेरा क्रोध नहीं हटता माफी करने से, माफी माँगने से। आपको मैंने जो गाली दे दी थी क्रोध में उसका जो आप पर घातक प्रभाव हुआ था, वह थोड़ा-सा कम हो जायेगा। अगर मैंने बहुत गहरी माफी माँगी, तो और कम हो जायेगा। अगर सच में उनके पैर पकड़ लिये और काफी, यानी

जो-जो मैंने क्रोध में किया था, उसके विपरीत किया। क्रोध में मैंने क्या किया, उनके अहंकार को चोट पहुँचाई थी और माफी मैं क्या करूँगा? उनके अहंकार को फुसलाऊँगा और खुशामद करूँगा।

माफी क्या है? खुशामद है। माफी क्या है? आप कल मुझे गाली दे गये और आज आकर मेरे पैर पकड़ लिये और कहने लगे कि क्षमा कर दें। तो कल जो गाली मुझे दे गये थे उससे मेरे अहंकार को चोट लगी थी, मेरे इगो को चोट लगी थी। आज आकर मेरे पैर पकड़ गये, मेरे इगो की परितृप्ति होती है। अगर उसी मात्रा में मेरे इगो को आकर आपने परितृप्त कर दिया, जिस मात्रा में चोट लगी थी, तो मेरा तो परिणाम खत्म हो जायेगा। पर आपको थोड़े ही कुछ होने वाला है। अपना जो नुकसान हुआ उसकी कोई पूर्ति नहीं होती।

और यह जो आप सोच रहे हैं कि जब क्रोध किया हमने और किसी को गाली दी, तो अपने अहंकार का पोषण हुआ था। अब हम क्षमा माँग रहे हैं, तो हमारे अहंकार का विसर्जन हुआ, इस भूल में मत पड़ना। अब शायद और अहंकार का पोषण हुआ। तब आप क्रोधी थे, अब क्षमावान भी होकर घर लौटे। हाँ, तब आपने अहंकार का जो मजा लिया था, वह क्रोध में लिया था। तुमने मुझे गाली दी, तो मैं तुम्हें दुगुने बजन की गाली देता हूँ। अब आप घर यह सोच कर लौट रहे हैं कि मैं कितना क्षमाशील प्राणी हूँ कि उनसे क्षमा माँग कर—तब यह था दम्भ। वह बहुत, जिसको कहें नेचुरल था, अब बहुत सोफिस्टिकेटेड है। वह बड़ा सहज दम्भ था कि आपने गाली दी, हमने भी गाली दी। अब जो दम्भ है, वह बड़ा विकसित दम्भ है। उसका पता चल जाता है। इसका पता पाना कठिन होगा।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—उसको मैं बुरा नहीं कह रहा। माफी माँगी, बुरी बात नहीं है। माफी माँगी, वह सच्ची थी। इसका लक्षण यह नहीं है कि

वह हिसाब से निकली या अपने-आप निकली। इसका लक्षण यह है कि अगर वह सच्ची थी तो दुबारा क्रोध नहीं पैदा होना चाहिए। सवाल यह है कि अगर वह सच्ची थी, अगर फिर दुबारा वैसा ही क्रोध पैदा होता है और फिर वैसी माफी माँग ली जाती है, तो उसका मतलब क्या है? तब तो मतलब यह हुआ कि क्रोध भी एक मेकेनिकल रिएक्शन है और माफी भी एक मेकेनिकल रिएक्शन है। क्रोध भी निकलता है, फिर माफी भी माँग लेते हैं। फिर पश्चाताप भी कर लेते हैं।

हम पूरी जिन्दगी इसी चक्कर में हैं। वही काम करते हैं, उसके लिए दुःखी हो लेते हैं। फिर वही करते हैं, फिर दुःखी हो लेते हैं। फिर वही—अगर कोई आपकी जिन्दगी उठा कर देखे पूरी, तो बड़ा हैरान होगा कि आप वही—वही काम, आखिर कर क्या कर रहे हैं? काम क्या है आपका? आप कोई चक्कर लगा रहे हैं कि कहीं चल रहे हैं? वही काम, फिर वही माफी, वही काम, फिर वही माफी। फिर पश्चाताप, फिर दुःख, फिर पश्चाताप—करीब-करीब दिन-रात की तरह, हमारी जिन्दगी में कुछ बातें बँधी हैं। बिलकुल रूटिन, उन्हीं-उन्हीं को हम कर रहे हैं।

मेरा कहना है, इस रूटिन को तोड़िये। रूटिन को तोड़ने का मतलब यह है कि अगर क्षमा माँगने जाते हैं तो फिर इस विचार के साथ जाइये कि अब क्रोध नहीं, नहीं तो क्षमा नहीं माँगूँगा। क्षमा माँगने से फायदा क्या है? जब कल फिर क्रोध करना ही पड़ेगा—इस पर नहीं तो किसी और पर करेंगे। क्षमा माँगने से क्या फायदा? पश्चाताप मत करिये, अगर कल फिर क्रोध करने की स्थिति है। तो तय करिये कि पश्चाताप नहीं करेंगे। क्योंकि कल फिर क्रोध करना ही हैं—अगर यह अनुभव आपमें आये कि पश्चाताप नहीं करेंगे, क्षमा नहीं माँगेंगे। उस आदमी से कह दीजिये कि क्षमा नहीं माँगेंगे, क्योंकि क्षमा माँगने से कोई फायदा नहीं। कल अगर तुमने फिर हमारे साथ

ऐसा ही किया, तो फिर क्रोध करेंगे। इसलिए हम क्या क्षमा माँगें आपसे। क्षमा नहीं माँगनी है।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—मेरी जो बात है, वह समझ में आ जाय, तो फिर मैं इन प्रश्नों को ले लूँ। मैंने कहा कि दमन नहीं, भोग नहीं, विसर्जन मार्ग है। क्रोध विसर्जित किया जा सकता है, ऑब्जर्वेशन, निरीक्षण से। जितना शान्त होकर, आप किसी वासना का निरीक्षण करेंगे, वासना उतनी विलीन हो जायेगी। जितने अशांत होकर, आप वासना का निरीक्षण न करके वासना के प्रति मूर्छित होंगे और बाहर के कारणों का निरीक्षण करेंगे, वासना उतनी प्रगाढ़ हो जायेगी। **मूर्छा क्रोध का प्राण है और निरीक्षण क्रोध की मृत्यु है।** और मूर्छा के रास्ते और तरकीबें हैं।

रास्ता यह है कि जब क्रोध आयेगा, तो हम क्रोध का निरीक्षण नहीं करेंगे। उसका निरीक्षण करेंगे, जिसने हमें क्रोध दिलवा दिया। हम समझेंगे कि उस आदमी की गलती है कि उसने हमको गाली दी तो हमें क्रोध आया, नहीं तो हमको क्यों क्रोध आता? अगर कोई हमको गाली न दे, तो हम क्यों क्रोधित होने वाले हैं। एक तो हमको उस आदमी ने क्रोध करवाया। अगर सारे लोग ऐसे हों कि कोई हमको गाली न दे, तो हम क्रोध नहीं करेंगे। इसलिए हमारा तो कोई सवाल ही नहीं है। उसने गाली क्यों दी? या उसने हमको परेशान क्यों किया? या उसने अपमान क्यों किया? हम उस वक्त क्रोध को न देख कर उसको देख रहे हैं, जिसने क्रोध दिलवाया है और इस भाँति हमारी नजर और निरीक्षण उस पर लगी रहेगी।

इसी स्थिति में, जब हम निरीक्षण किसी और का कर रहे हैं, भीतर हर स्थिति में मूर्छित होंगे। वहाँ हमारा ध्यान लगा है, यहाँ ध्यान-हीन हैं। इस मूर्छा की स्थिति में, क्रोध हमारे जीवन को

पकड़ लेगा। जब हम क्रोध कर चुकेंगे और हमारी शक्ति व्यय हो जायेगी क्रोध में, धक्का लगेगा, तब अचानक उस पर से ध्यान हट-कर जिस पर हम क्रोधित हो रहे थे, अपने पर ध्यान आयेगा। इस शक्ति के खोने की वजह से, पीड़ा की वजह से, ध्यान अपने पर आयेगा। तब हम पछतायेंगे कि यह तो बड़ा बुरा हुआ। यह तो नहीं करना था, यह तो फिजूल किया, इससे क्या फायदा था ?

जब मूर्छा टूटती है, तब पश्चाताप होता है। लेकिन तब तक क्रोध चला गया होता है। निरीक्षण करने को कुछ है नहीं। तूफान जा चुका, वहाँ सब चीजें टूटी-फूटी पड़ी हैं। उनका निरीक्षण करो, उनसे दुःखी होओ और तय करो कि अगली बार क्रोध नहीं करेंगे। तब फिर क्रोध आयेगा, तब फिर आप निरीक्षण करने को मौजूद नहीं रहेंगे, बाहर भी नहीं चले जायेंगे। फिर सब खण्डित होगा। फिर लौट कर देखेंगे, फिर पश्चाताप होगा। क्रोध और पश्चाताप का यह घेरा चलेगा।

और यह जो हम कहते हैं कि क्रोध करना ही पड़ता है—स्थिति ऐसी है, समाज ऐसा है। ये सब जस्टीफिकेशंस हैं। ये हम अपनी गलतियों के लिए निरन्तर खोजते हैं। समाज, जैसा हम चाहते हैं, वैसा कभी नहीं होगा। आप समाप्त हो जायेंगे और समाज जैसा है वैसा रहेगा। अगर महावीर या बुद्ध यह सोचें कि जब समाज अच्छा हो जायेगा, तब हम शान्त हो जायेंगे तो वे कभी शान्त नहीं हुए होते।

इस जगत में समाज के तल पर ऐसी स्थिति कभी नहीं आयेगी कि सारे लोग इतने शान्त हों कि आपको क्रोध का मौका न दें। और मेरा मानना है कि अगर ऐसी स्थिति कभी आ जाय, तो बिलकुल डैड लोगों की होगी, मुर्दा लोगों की। वह ऐसा कुछ भी न करेंगे कि आपमें क्रोध पैदा हो, यह तो असम्भव है। दुनिया में यह तो असम्भव है कि बाहर की कोई भी स्थितियाँ ऐसी न हों, जो आपको क्रोध का

मौका दें, क्योंकि मैंने आपसे कहा कि आप तो कलम में स्याही न चले तो क्रोधित हो जाते हैं। आप तो रास्ते में चलते-चलते यदि चप्पल टूट जाय तो क्रोधित हो जाते हैं, क्योंकि यह तो असम्भव है कि चप्पलों को राजी किया जाय कि कभी रास्ते में चलते समय न टूटें। यह तो असंभव है कि कलमों को समझाया जाय कि तुम कभी जब कोई खत लिखता हो तो देख लेना कि मतलब का काम कर रहा है, कहीं इस वक्त स्याही बन्द न हो। यह तो असम्भव है।

आदमियों को भी समझा-बुझा कर राजी कर लिया, तो भी तो असम्भव है, क्योंकि बहुत और दुनिया है। उसमें कुछ तय करना कठिन है। अभी यहाँ गर्मी पड़े और यह पंखा बन्द हो जाय, तो समझाना बड़ा कठिन है कि अभी इस वक्त गर्मी पड़ती है, हम क्रुद्ध हो जायेंगे और हम गुस्से में आ जायेंगे। **दुनिया कभी ऐसी नहीं होगी कि उसमें क्रोध को पैदा करने के कारण विलीन हो जायँ। लेकिन व्यक्ति ऐसा हो सकता है कि उसमें क्रोध के कारणों के रहते हुए क्रोध की शक्ति विलीन हो जाय।** यानी दो ही तो बातें हैं—क्रोध के कारण विलीन हो जायँ, तो हम अक्रोधी हो जायेंगे या फिर हममें क्रोध करने की क्षमता विलीन हो जाय, तो हम अक्रोधी हो जायेंगे। एक रास्ता है कि बाहर सब ठीक हो जाय, तो हम क्रोध नहीं करेंगे। यह असम्भव है। यह कभी नहीं होगा, यह हो ही नहीं सकता।

अभी मैं सफर में था। मेरे कम्पार्टमेंट में एक सज्जन बैठे थे। उनसे मेरी कुछ क्रोध के बाबत बात हो रही थी। जो आपने पूछा, उन्होंने भी कहा कि भई बाहर ऐसी चीजें हैं कि हम क्या कर सकते हैं। बाहर लोग सब गड़बड़ कर देते हैं। मैंने उनसे कहा, अगर लोग ही होते दुनिया में, तो भी ठीक था। समझाते-बुझाते, पर वह भी आसान काम नहीं था। तीन अरब लोग हैं जमीन पर। आज एक को समझाने की बात करता हूँ, तो वह कहता है कि बाकी एक को छोड़

कर तीन अरब जो लोग हैं, वे गड़बड़ कर रहे हैं। दूसरे को समझाऊँगा, वह कहेगा, दूसरे लोग गड़बड़ कर रहे हैं, जब तक वह ठीक न हो जाय, तब तक हम कैसे ठीक हो सकते हैं ?

अगर ये सारे लोग यह कहते हैं कि बाकी लोग ठीक न हो जायँ, तब तक हम कैसे ठीक हो सकते हैं तो ठीक होने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि एक ही क्षण में सारे लोग ठीक हो जायेंगे, यह असम्भव है। फिर चीजें हैं दुनिया में। फिर क्या हुआ कि वह ट्रेन चली और एक स्टेशन के बीच आकर खड़ी हो गयी और कोई दो घण्टे खड़ी रही। उनके क्रोध का तो ठिकाना नहीं रहा। वह डिब्बे के बाहर झाँक कर अन्दर आये कि मेरा तो मुकदमा गड़बड़ हुआ जा रहा है। मुझे तो यह है, मुझे तो वह है। और मुझे तो इतने वक्त पर पहुँचना ही चाहिए था। फिर तो वे बहुत उत्तप्त होने लगे। तो मैंने उनसे कहा, आप देखिये, अभी ट्रेन खड़ी हो गयी। अब यह बड़ा कठिन है कि यह ट्रेन बिलकुल खड़ी हो ही नहीं कभी, जब कोई आदमी मुकदमे के लिए जा रहा हो। बड़ा कठिन है। उसको कोई पता नहीं, आपके मुकदमे से इसको कोई मतलब नहीं।

तो अब यह जो आदमी है, यह कहता है कि अगर कभी खड़ी न हो, तो हम क्रोधित न होंगे। यह असम्भव है। यह सम्भव नहीं है। सवाल दुनिया का बिलकुल नहीं है, सवाल निपट व्यक्ति का है और हम दुनिया के नाम उठा कर अपनी कमजोरी छिपाते हैं। हम यह कमजोरी छिपा लेते हैं, अपने को समझा लेते हैं कि हमारा थोड़े ही कसूर है। जो आदमी अपनी गलतियों का जस्टीफिकेशन खोज लेगा, वह आदमी कभी परिवर्तित नहीं होगा। जस्टीफिकेशन तो बहुत हैं।

अपनी गलतियों के लिए कोई एक्सप्लेनेशन, कोई जस्टीफिकेशन, कोई तर्कबद्ध रेशनलाइजेशन मत खोजिये। अपनी गलती को अपनी गलती समझिये। उसे दूसरे पर मत टालिये, क्योंकि टालने से वह

कभी आपका पीछा नहीं छोड़ेगी। टालना तरकीब है, जिसके माध्यम से, हम अपने को मुक्त कर लेते हैं कि हमारी है ही नहीं, हम क्या कर सकते हैं। हम सारे लोग और हमारी सारी बुराइयाँ, इसीलिए जीती चली जाती हैं कि हम कभी उनको अपना नहीं मानते। जिस बुराई को हम अपना न मानेंगे, उस बुराई से हम मुक्त नहीं हो सकते हैं।

बुराई से मुक्त होने का पहला कदम यह है कि पूरी तरह उसके लिए अपने को ही जिम्मेवार समझो कि मैं उसका जिम्मेवार हूँ। पहले तो, पहले ही पूरा अनुभव करो कि पूरी रिस्पोंसिबिलिटी मेरी है। पहली बात तो यह है और फिर दूसरी बात यह कि उस बुराई को गाली मत दो, उसका निरीक्षण करो और तब धीरे-धीरे अनुभव होगा कि जिम्मेवारी ले लेने से कि मेरी बुराई, बुराई को दूर करने के प्रयत्न शुरू होते हैं। **इस दुनिया की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हर आदमी, अपनी सारी बुराइयों के लिए किसी और को जिम्मेवार समझता है।** हर आदमी अपनी बुराई के लिए किसी और को जिम्मेवार समझता है। कोई आदमी अपनी बुराई के लिए अपने को जिम्मेवार नहीं समझता। जो जिम्मेवार नहीं समझेगा, वह उसे दूर करने का उपाय क्यों करने लगा ? सवाल ही नहीं उठता। वह जिम्मेवार ही नहीं है उसके लिए।

अतः आत्मिक साधना का पहला चरण तो यह है कि समस्त बुराइयाँ जो तुममें हैं, उसके लिए तुम जिम्मेवार हो, उसे अंगीकार करो। दूसरे पर बोझ मत डालो, दूसरे का बहाना मत लो। इसके लिए बड़ा साहस चाहिए, क्योंकि हम अपनी आँखों में अपनी एक तस्वीर बनाये हुए हैं, जो बड़ी खूबसूरत होती है। उसमें यह मानना कि हममें भी दाग और धब्बे हैं, बड़ा कठिन होता है। हम सारे लोग अपनी-अपनी एक तस्वीर बनाये हुए हैं, अपने मन में—एक-एक इमिजिनेशन, एक चित्र हमारे दिल में है, जो हम अपना बनाये हुए हैं कि हम ऐसे

आदमी हैं। उसमें यह मानना कि हम क्रोध करते हैं, उस चित्र को खण्डित करता है, वह जो कल्पना है, उस चित्र को तोड़ता है। बड़ा बुरा लगता है। जिस आदमी को आपने जीवन में जाना है, उसे अपनी तस्वीर बिलकुल खण्डित कर लेनी होगी। उसे हिम्मत करनी होगी कि मैं जैसा हूँ, वैसा ही अपने को जानूँ। वैसा नहीं जैसा कि मैं होना चाहता हूँ या दीखना चाहता हूँ।

हम अपने भीतर कोई तीन तरह के आदमियों को लिये हुए हैं—एक तो जैसे हम हैं, जिसका हमें पता ही नहीं चलता है। एक, जैसे हम दीखना चाहते हैं, जिसको हम रोज-रोज सम्हालते रहते हैं। और दूसरे जैसे हम लोगों को दिखाई पड़ते हैं। तो कुल तीन परतें हमारे भीतर हैं। एक तो वह जैसा मैं हूँ, जो दिखाई पड़ते हैं। उसकी भी हम फिक्र रखते हैं, जो लोगों को हम जैसे दिखाई पड़ते हैं। हम उसकी बहुत फिक्र करते हैं। पूछते रहते हैं, पता लगाते रहते हैं कि लोगों को हम कैसे दिखाई पड़ते हैं? वह हमको ठीक समझते हैं कि नहीं। कौन आदमी हमें देख कर हँसता है? कौन आदमी हमें देख कर क्या कहता है? वह सब हम पता रखते हैं, उस सबका हिसाब रखते हैं। उसका हम हिसाब रखते हैं और एक तस्वीर बना रखी है कि लोग हमें क्या समझते हैं। और एक हम अपनी तस्वीर बनाये रखते हैं भीतर हृदय में कि लोग हमें ऐसा समझें।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—हाँ, आप यह कहती हैं, कुछ लोग हैं जो अपनी भूलों को, अपने पापों को जाकर कन्फेस करेंगे और सोचते हैं कि उनके पाप जो हैं वह क्षमा कर दिये गये। यह भी बात है, अगर सच में उन्होंने कन्फेस किया है और उनके पाप क्षमा हो गये, तो वे ही पाप उनसे फिर दुबारा नहीं होने चाहिए। लेकिन जब दूसरे दिन सुबह चर्च के बाहर लौट कर वे फिर वैसे पाप करते हुए दिखाई पड़ते हैं, तो

उन्होंने उस कन्फेशन को भी एक तरकीब बना लिया। वह एक मतलब हो गया। वह पुरानी तरकीब, यहाँ भारत में भी थी, इस तरह की। जो लोग सोचते हैं, गंगा-स्नान कर आये तो पाप से मुक्त हो गये। फिर गंगा से लौट आये, फिर वही पाप करेंगे। फिर यह भी सुविधा हो गयी कि जब मन होगा, गंगा में जाकर स्नान कर लेंगे।

रामकृष्ण परमहंस से किसी ने पूछा कि लोग कहते हैं, गंगा में जाने से पाप मिट जाते हैं। आप कहते हैं? वे बड़े सीधे-सादे आदमी थे। वह यह भी नहीं कहना चाहते थे कि गंगा में जाने से पाप नहीं मिटते। उन्होंने कहा, पाप एकदम मिट जाते हैं। वह जो गंगा के किनारे, दरख्त होते हैं, आप पानी में डूबे, वे पाप दरख्त पर बैठ जाते हैं, उसी दरख्त पर बैठ जाते हैं। आप नहा कर वापस निकले, वह फिर सवार हो जाते हैं। वह गंगा दूर कर सकती है, लेकिन गंगा में कब तक डूबे रहियेगा? निकलना ही पड़ेगा। वे फिर वापस सवार हो जायेंगे। लेकिन उसमें कोई सार नहीं है, गंगा में जाने से।

टालस्टाय ने, लियो टालस्टाय ने एक घटना लिखी है—एक दिन सुबह-सुबह चर्च गया, एक बहुत बड़ा करोड़पति, एक बड़ा प्रख्यात आदमी, वहाँ कन्फेस कर रहा था सुबह चार से पाँच बजे, एकान्त में जाकर, अपने पापों के बाबत। अन्धेरा था, मैं भी एक कोने में खड़ा होकर सुनता रहा। मैं बड़ा हैरान हुआ। मैं उसको बड़ा अच्छा आदमी समझता था। और वह कह रहा था, मैं पापी हूँ, मैं दुराचारी हूँ, मैं यह हूँ और मैं वह हूँ। वह खूब रो रहा था और कह रहा था, हे प्रभु क्षमा करो, मेरे पापों को। टालस्टाय ने लिखा, मैं उसे बड़ा अच्छा आदमी समझता था। उस दिन पता चला कि अरे! यह तो दुष्ट है। बड़ा दुराचारी है। वह आदमी निकला, उसको पता नहीं था कि यहाँ और भी कोई खड़ा है। उसने मुझे देखा, वह बड़ा घबरा गया। मैं उसके पीछे-पीछे चला। जब हम चौगड्डे

पर पहुँचे तो मैंने कहा, भाई सुनते हो,—एक आदमी से। ये जो सज्जन हैं, इनको अब तक ठीक समझते थे। यह पक्का पापी है। अभी मैं इसका सुन कर आया, सब कन्फेशन। उस आदमी ने गुस्से से टालस्टाय को देखा और कहा, देखो, यह बात मन्दिर की थी और मुझे पता नहीं कि तुम मौजूद थे। यह बाजार में कहने की बात नहीं है। अगर तुमने किसी से कहा, तो मैं अपमान का मुकदमा चलाऊँगा। मुझे पता नहीं कि तुम वहाँ थे और तुमसे मैंने कही भी नहीं। वह तो भगवान और मेरे बीच की बात है।

ये जो हमारी धारणाएँ हैं, इनमें कोई अर्थ नहीं हैं। कन्फेशन का जो मूलतः अर्थ है, वह बहुत दूसरा है। उसका अर्थ यही है, जो मैंने कहा, अगर व्यक्ति अपने परिपूर्ण पाप को, अपनी परिपूर्ण बुराई को, निरीक्षण करे। उसे भूल जाय तब, तब वह प्रभु के सामने निवेदन कर देगा, निवेदन यह कि यह-यह मुझमें, है—यह-यह मुझमें पूरा ऑब्जर्वेशन करे, तो वह निवेदन कर देगा कि यह मेरे—जो प्रभु को मानते हैं, उस भाँति वे निवेदन कर देंगे कि हमारे भीतर है। निरीक्षण से निवेदन आयेगा। निरीक्षण में मौत हो जायेगी। निवेदन तो औपचारिक है। पाप की मृत्यु तो निरीक्षण में ही हो जायेगी। निवेदन औपचारिक है कि यह मुझमें दिखाई पड़ा, यह मैं प्रभु से कह दूँ। वह आदमी मुक्त हो जायेगा, वह निरीक्षण से मुक्त हो रहा है। क्योंकि बिना निरीक्षण के तो निवेदन नहीं कर सकता। तो दुनिया में जो कौमें, ईश्वर को मानती हैं, वह अपने पाप को, जाकर उनके सामने निवेदन कर दें। लेकिन निवेदन के पहले निरीक्षण चाहिए, तब तो वह कहेंगे कि मुझमें क्या पाप है। जो कौमें ईश्वर को नहीं मानतीं, वह निरीक्षण से पाप से बाहर हो जायेंगी। वह निवेदन से पाप से बाहर नहीं हो रहे, वे निरीक्षण से पाप से बाहर हुए जा रहे हैं।

पर अकेला कन्फेशन, जैसा वह हो गया है, एक फार्मेलिटी—लोग सोचते हैं, कह दिया भगवान से, मामला खत्म हो गया। इससे कोई

हल नहीं, क्योंकि कल दूसरे दिन, वही काम तो फिर कर रहा है, वह आदमी। उसको कहीं फिक्र ही नहीं है इस बात की कि मैंने जो किया, वह बुरा था। वह तो डर के वश यह रास्ता अच्छा है, आसान है—यह तो बहुत ही आसान रास्ता है कि आप जाकर कन्फेस कर दें, मामला खत्म हुआ, फिर करें, फिर कन्फेस कर लें। यह तो बहुत सस्ता हो गया। मैं ऐसा नहीं मानता, इतना सस्ता जीवन नहीं है कि गंगा में नहाने से या चर्च में जाकर कन्फेस करने से, आप बाहर हो सकते हैं। इतने भर से कोई बाहर नहीं हो सकता।

उसके लिए तो किसी और आन्तरिक साधना में लगना होगा, किसी और गहरे निरीक्षण में लगना होगा। एक इनर ऑब्जर्वेशन में प्रविष्ट होना होगा, और तब उसके माध्यम से अगर कन्फेशन निकलेगा, तो ठीक है। अगर किसी की वैसी निष्ठा हो, तो वह जाकर भगवान को निवेदन कर दे, वह बाहर हो जायेगा। लेकिन कन्फेशन अकेला बाहर नहीं कर सकता है। अगर कन्फेशन अलग करता हो, बाहर करता हो, तब बहुत आसान बात है। जिन्दगी भर लोग यही सोचते हैं और पापियों के लिए बड़ी राहत हो जाती है कि कितना ही पाप करो, जाकर भगवान से कह देंगे, सब बाहर हो जायेंगे।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—यह बात जो मैं कह रहा था, समझ में आयी ? मैं इसलिए कह रहा हूँ कि कई दफे मुझे ऐसा लगता है कि जैसे कि मैं क्रोध के बाबत चर्चा कर रहा हूँ, अगर वह समझ में आ जाय, तो उसका कोई परिणाम होगा। नहीं तो क्रोध की बात आपने एक तरफ रखी है। अब आप पूछते हैं, पुनर्जन्म होते हैं या नहीं, या यह होता है या नहीं।

मैं पुनर्जन्म समझा भी नहीं पाऊँगा और आप शायद पूछेंगे, यह आत्मा क्या है ? होता क्या है ? मेरा मानना यह है कि एक भी प्रश्न की पूरी आंतरिक गहराई में उतर जायँ, तो आपके सारे

प्रश्न हल हो जायेंगे—एक भी प्रश्न की पूरी गहराई में उतर जायँ, सारे प्रश्न हल हो जायेंगे और एक प्रश्न को छुएँ और दूसरे पर कूद जायँ, तो कोई प्रश्न हल नहीं होगा। कोई भी एक प्रश्न में, परिपूर्ण-रूपेण उसकी पूरी जड़ तक उतर जायँ, तो शायद आप हर प्रश्न की जड़ में उतर जायेंगे, क्योंकि प्रश्न शायद एक ही है आदमी का, उसके रूप भर अनेक हैं। वह बातें करता है यह और वह, यह और वह—प्रश्न शायद एक हो है। कभी इस पर सोचिये।

यह जो क्रोध के बाबत, इतनी उत्सुकता से मैंने बात की, उसका कुल कारण इतना ही है कि वह बात हर चीज की बाबत, वैसी की वैसी है। कितनी-कितनी लागू है, क्योंकि हमारे सारे वेग, चाहे चिन्ता का हो, चाहे क्रोध का हो, चाहे किसी और कामना का हो, और इच्छा का हो, एक से हैं। और जो आदमी क्रोध को हल करने में सफल हो जायेगा, वह पूरा का पूरा टेकनीक जान गया। जो किसी भी दूसरे वेग पर प्रयोग करने से वहाँ भी सफल हो जायेगा। और तब जो निर्वेग-स्थिति होगी चित्त की, उसमें आप जानियेगा, उसमें आपको अनुभव होगा, इस बात का कि आप आज ही नहीं हो इस जगत में, उस शांत स्थिति में आपको अनुभव होगा, आपका पीछे भी होना है। उस शांत स्थिति में आपको अनुभव होगा कि आप बड़े अनन्त जीवन के मालिक हैं, उसमें आपको अनुभव होगा, उस निर्वेग निर्द्वन्द्व चित्त की स्थिति में, कि मैं शरीर नहीं हूँ। और जिसको मैंने सेल्फ ऑब्जर्वेशन कहा, आत्मनिरीक्षण कहा, अगर इसका प्रयोग करें, तो आप दंग रह जायेंगे कि आपके भीतर, आपके पिछले जन्मों की स्मृतियाँ भी मौजूद हैं, वें मेमोरीज भी मौजूद हैं। अगर आप बहुत गहराई से निरीक्षण करने में समर्थ हो जायँ, तो आप अपने पिछले जन्मों की सारी स्मृतियों को वापस देख सकते हैं, लेकिन उसके पहले मैं कहूँ कि पुनर्जन्म होता है, कोई अर्थ नहीं रखता।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—उससे क्या मतलब है? उससे क्या हल होगा, अगर तारीख का भी पता चल जाय, समय का भी पता चल जाय और जगह का भी पता चल जाय, तो उससे आपको क्या होगा? मैं यह पूछता हूँ, उससे क्या होगा? उससे तो कुछ भी नहीं होगा। आप कहेंगे, ठीक। यह सवाल जो है, मेरा जोर जो है, मैं कोई विचारक नहीं हूँ, जरा भी। मेरा इससे भी कोई मतलब नहीं है कि फलाँ सिद्धान्त कैसा सिद्धान्त है। मुझे उससे कोई मतलब नहीं।

अभी एक गाँव में ठहरा था। गाँव के दो वृद्ध जन मेरे पास आये। और उन्होंने कहा, बीस साल से एक झँझट और झगड़ा हमारे बीच है। हम दोनों मित्र हैं। एक जैन थे, एक ब्राह्मण थे। एक झँझट हमेशा है, जो हमेशा बकवास में आ जाती है, विवाद हो जाता है। आपकी बातें कुछ अच्छी लगीं, तो हम पूछने आये हैं कि आप शायद हमारा हल कर दें। इस बुढ़ापे में हल हो जाय तो अच्छा। हम दोनों पुराने मित्र हैं, लेकिन वह एक बात है। मैंने पूछा, वह कौन-सी बात है, जो बीस साल से आपको परेशान किये हुए है। तो उन्होंने कहा कि यह सवाल है कि जगत को भगवान ने बनाया या कि नहीं बनाया। यह ब्राह्मण जो हैं, ये कहते हैं कि बनाया भगवान ने और हम कहते हैं, यह भगवान ने बनाया नहीं। अनादि है। बस इस मुद्दे पर हमारे झगड़े हैं और कभी झगड़े नहीं होते, बस ये बक-वासें होती हैं। फिर मैंने उनसे पूछा, अगर यह तय भी कर दें बिल-कुल, या कोई भी तय कर दे बिलकुल कि भगवान ने बनाया, तो आप क्या करियेगा? या यह तय हो जाय कि भगवान ने नहीं बनाया, तो आप क्या करियेगा? और करना क्या है? बस तय हो जायेगा।

थोड़ी देर हम यह सोचें कि जिन-जिन प्रश्नों का हमारे जीवन के ट्राँसफर्मेशन से कोई वास्ता न हो, वह-वह प्रश्न, जिसको हम कहें,

वह कल बजूभाई कहते थे प्रास्टीट्यूशन ऑफ माइण्ड—तो उसमें कोई मतलब नहीं, वह हम दिमाग के साथ व्यर्थ नासमझी का काम कर रहे हैं। कोई फायदा नहीं, कोई मतलब नहीं। मैं कोई विचारक नहीं हूँ। मेरी दृष्टि इससे बिलकुल संबंधित नहीं कि क्या है और क्या नहीं है। मेरी दृष्टि कुल इस बात से संबंधित है कि आप जो हो, इस क्षण, वह क्षण आपका दुःख से भरा है। अगर वह दुःख से नहीं भरा है, तब तो कोई दिक्कत ही नहीं है। फिर आपका कोई प्रश्न ही नहीं है।

बुद्ध के जीवन में एक घटना घटी। एक व्यक्ति मौलुंकपुत्त ने जाकर उनसे ग्यारह प्रश्न पूछे। उन प्रश्नों में सारे प्रश्न आ जाते हैं। यह प्रश्न भी आ जाता है उसमें कि आत्मा जगत में क्यों आयी ? यह जगत किसने बनाया ? सारे प्रश्न आ जाते हैं। करीब-करीब वह ग्यारह प्रश्नों के आस-पास सारी फिलासफी घूमती है, सारे जगत की। बुद्ध ने मौलुंकपुत से कहा कि तुम उत्तर चाहते हो ? सच में चाहते हो ? वह बोला, उत्तर चाहता हूँ। तब तो मैं पूछता हूँ, मैं तो अनेक वर्षों से पूछता हूँ। तो बुद्ध ने पूछा, जिन-जिन से तुमने पूछा, उन-उन ने उत्तर दिये थे ? उसने कहा, सबने उत्तर दिये थे। तो बुद्ध ने कहा, तुम्हें उत्तर से उत्तर मिला क्यों नहीं ? जब अनेक से पूछ चुके, उन सबने उत्तर दिये, तुम्हें उत्तर क्यों नहीं मिला ? क्या वे उत्तर गलत थे। अगर वे उत्तर गलत थे, तो तुम्हें क्या सही उत्तर का पता है ? तभी तुम उनको गलत समझ सकते हो। बुद्ध ने बड़ी अद्भुत बातें उससे कहीं। उन्होंने कहा, इतने लोगों से पूछा, उत्तर उन्होंने दिये। तो वे उत्तर तुम्हें तृप्त क्यों नहीं कर पाये ? क्या वह उत्तर गलत थे ?

अगर वह गलत थे, तो अर्थ हुआ कि तुम्हें सही का पहले से पता है। अगर सही का पहले से पता है, तो पूछते क्यों हो ? अगर सही का पता नहीं है, तो फिर उनको तुमने गलत क्यों माना ? तो बुद्ध ने कहा, मैं भी तुम्हें उत्तर दे दूँगा, फिर भी तुम किसी से पूछोगे। मैं तुम्हें उत्तर दे दूँ, फिर तुम किसी से पूछोगे। बुद्ध ने कहा, मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता। उत्तर जानने की विधि देता हूँ। बुद्ध ने एक अजीब बात कही। मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता कि आत्मा क्या है और कब आयी अथवा नहीं आयी और पीछे जन्म था कि नहीं और आगे जन्म होगा कि नहीं। और आगे वैकुण्ठ में जायेंगे कि कहाँ जायेंगे, मैं कुछ नहीं देता उत्तर। मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता, क्योंकि उत्तर जिन्होंने दिये, तुमने उनके उत्तरों के साथ जो व्यवहार किया, वही तुम मेरे उत्तर के साथ करोगे। मैं तुम्हें उत्तर नहीं देता।

तुम छः महीने रुक जाओ। मैं जो करने को कहता हूँ, करो, और मुझसे मत पूछना इस बीच में। छः महीने के बाद, मैं ही तुमसे पूछूँगा कि अब पूछना हो, तो पूछ लो। तो बुद्ध का एक शिष्य था—आनन्द। उसने मौलुंकपुत्त से कहा, इनकी बात में मत आना। मैं कोई दस-बारह वर्ष से इनके करीब हूँ और यह धोखा इन्होंने कई लोगों को दिया। जो भी आकर इनसे प्रश्न पूछता है, उससे ये कहते हैं, छः महीने रुको, साल भर रुको, तो तुम्हें उत्तर दूँगा। फिर न मालूम उन लोगों को क्या हो जाता है कि वे पूछते नहीं फिर।

तो बुद्ध के पास जो संघ बैठता था, उसमें ऐसे हजारों भिक्षु थे, जिन्होंने कभी नहीं पूछा, जो सामने बैठे रहते थे। एक दफा प्रसेनजित ने बुद्ध से पूछा कि सामने के लोग क्या हैं, समझ में ही नहीं आता। ये हमेशा बैठे रहते हैं। न कभी कुछ पूछते, न कभी सिर हिलाते, न कुछ कहते, चुपचाप बैठे सुनते रहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि पता नहीं वे सुनते कि नहीं सुनते। न कुछ पूछते, न कुछ विवाद करते हैं। न कभी कोई उत्तर, बस बैठे रहते हैं, साँझ को चले आते हैं।

बुद्ध ने कहा, ये बड़े पहुँचे हुए लोग हैं। ये बामुश्किल आगे आ पाते हैं। ये जब तक पूछते रहते हैं, पीछे रहते हैं। फिर जैसे-जैसे इनका पूछना खत्म होता चला जाता है, ये आगे आ पाते हैं। ये बड़े छँटे हुए लोग हैं। ये इसलिए नहीं पूछते कि इनका प्रश्न है। अगर नहीं है कोई तो प्रश्न गिर गया। तो मौलुंकपुत्त से आनन्द ने कहा कि रुके छः महीने, तो आशा कम है कि पूछो। फिर वह छः महीने रुका। बुद्ध ने जो उसे करने को कहा, उसने किया। छः महीने बुद्ध ने बड़े संघ में, भिक्षुओं के बीच कहा, मौलुंकपुत्त! तुम प्रश्न लेकर आये थे, पूछ लो। वह आदमी खड़ा हो गया और बोला, मेरे कोई प्रश्न नहीं हैं। छः महीने में तो वे हवा हो गये। बुद्ध ने कहा, कोई उत्तर मुझसे पूछना हो, तो पूछ लो। फिर उसने कहा, कोई उत्तर आपसे नहीं पूछना है, क्योंकि यह तय हो गया, उत्तर अपना आ गया।

तो जीवन-सत्य के सम्बन्ध में, उत्तर किसी से नहीं मिलेंगे। उत्तर तो भीतर मौजूद हैं। उस भीतर तक पहुँचने की विधि मिल सकती है। मैं नहीं कहता कि क्रोध क्या है। मैं नहीं कहता, अक्रोध क्या है। मैं इतना ही कहता हूँ, जो भी हो क्रोध, उसका निरीक्षण करो। निरीक्षण विधि है। उससे क्रोध का पता चलेगा, उसके ही माध्यम से अक्रोध का पता चलेगा। निरीक्षण विधि है। अपने भीतर विचार का निरीक्षण करो। उससे विचार का पता चलेगा। उसी से धीरे-धीरे निर्विचार का पता चलेगा। निरीक्षण विधि है, उसका निरीक्षण करो।

धीरे-धीरे शरीर का पता चलेगा। अभी तो शरीर का भी आपको पता कहाँ है? अभी आपने शरीर को भी ऐसे देखा है, जैसे अपने बाहर से देख रहे हों। अभी आप शरीर के इस ऊपरी तल से ही परिचित हैं, जो ऊपर से दिखाई पड़ता है। अभी आपने शरीर को ऐसा थोड़े देखा, जैसे शरीर के भीतर बैठ कर, शरीर को देख रहे

हों। अभी तो ऐसा देखा, जैसे बाहर से खड़े होकर देख रहे हों। अभी अपने शरीर से भी आपका जो परिचय है, वह ऐसा ही है, जैसे एक आदमी मकान के बाहर खड़ा होकर, मकान को देख रहा हो, और एक आदमी मकान के भीतर बैठ कर मकान को देख रहा हो। अभी आपने भीतर बैठ कर शरीर को भी नहीं देखा। अगर निरीक्षण में गहरे उतरेंगे, तो भीतर बैठ कर शरीर को देखेंगे। तब आपको पता चलेगा, यह ज्योति का पिण्ड भीतर है और यह बाहर खोल घिरी हुई है। क्रोध दीखेगा। अभी मन को भी नहीं देखा। और भीतर उतरेंगे तब आपको मन दिखाई पड़ेगा कि ज्योति भीतर और चारों तरफ विचार की मक्खियाँ घूम रही हैं। उसके पार शरीर के चमड़े की हड्डी की खोल चढ़ी हुई है। वह निरीक्षण, उसको धीरे-धीरे भीतर ले जायेगा, आंतरिक में ले जायेगा और तब केवल शुद्ध उसका अनुभव होगा जो निरीक्षण करता रहा, उसका अनुभव होगा। और उसके अनुभव से सारे प्रश्न हल हो जायेंगे।

मैं आपको प्रश्न के उत्तर देता हूँ, तो मुझे हमेशा यह ख्याल बना रहता है कि कहीं कोई बौद्धिक ही बात न रह जाय, कहीं ऐसा लगे कि मैं कुछ अच्छे से उत्तर दे रहा हूँ। उनका कोई मतलब नहीं है। मेरे अच्छे-बुरे उत्तर का कोई मतलब नहीं है। मेरी सारी चेष्टा इस बात की है, इसकी नहीं कि आपका थोड़ा-सा एकेडेमिक ज्ञान बढ़ जाय कि आपको कुछ और अच्छी-अच्छी बातें पता चल जायँ। इससे मुझे क्या मतलब है? मेरी पूरी चेष्टा यह है कि आपको उस बात की, इसकी दिशा खुल जाय, जहाँ आप शान्त हो सकें और सत्य को जान सकें। मैं नहीं कहता कुछ कि कब आत्मा आयी या नहीं आयी। मैं तो कुछ नहीं कहता। इतना मैं आपसे कहता हूँ कि अभी आपमें कुछ है जो आत्मा है और अभी आपको अपने भीतर तक उतरने का रास्ता है। उसको व्यर्थ प्रश्नों में खोकर समय और जीवन को व्यय न करें।

पिछली बार बात की थी—एक भिक्षु ने जाकर एक संन्यासी के पास—वह घटना चीन में घटी। उस संन्यासी के पास गया। वहाँ यह रिवाज था कि संन्यासी के तीन चक्कर लगाओ और उसको प्रणाम करो, फिर प्रश्न पूछो। वह सीधा जाकर पहुँचा। उसने उसके हाथ पकड़े और उसने उससे प्रश्न पूछा। वह संन्यासी बोला, तुमको इतना भी पता नहीं, रिवाज का भी पता नहीं कि पहले विधिवत प्रदक्षिणा करो, फिर बैठो, विधिवत प्रदक्षिणा करो, फिर बैठो, नमस्कार करो, फिर जगह पर बैठो। फिर तुम ऐसे हाथ पकड़ कर पूछते हो, जैसे कि झगड़ा हो गया मेरा तुमसे।

उसने जाकर हिला दिया और पूछा। वह आदमी बोला, मैं तीन नहीं, तीन हजार चक्कर लगा दूँ, लेकिन जीवन का भरोसा नहीं। अगर मैं तीन ही चक्कर लगाने में समाप्त हो जाऊँ, तो जिम्मा तुम्हारा। उसने कहा, मैं जब तीन ही चक्कर लगाने में गिर जाऊँ और मर जाऊँ—किसी क्षण तो मरूँगा ही, यह तीन ही चक्कर में गिर जाऊँ और मर जाऊँ और नमस्कार करने में मेरा प्राण निकल जाय, तो फिर जिम्मा किसका? फुरसत मुझे नहीं है और उसने बड़ी अजीब बात की।

तो, उसने पूछा कि तुम पूछना क्या चाहते हो और उसने कहा, यह भी मैं तय नहीं कर पाता कि क्या पूछूँ, मैं तुमसे यही पूछने आया हूँ कि क्या पूछना चाहिए। बड़ी अजीब और बड़ी प्रीतिकर बात लगी। उसने कहा, मुझे यह भी पक्का नहीं, गलत-सलत पूछूँगा, क्योंकि मैं तो गलत आदमी हूँ। मेरा तो कोई हिसाब-किताब है नहीं। मैं इतना ही पूछने आया हूँ कि क्या पूछना चाहिए, यह मुझे बता दें। फुरसत तो मुझे है नहीं। नहीं तो मैं तीन हजार चक्कर लगा दूँ, मुझे कोई दिक्कत नहीं है।

यह जो आदमी है—प्रश्न नहीं है इसके पास, प्यास है और हमारे पास अक्सर प्रश्न हैं, प्यास नहीं हैं। प्यास को घनीभूत करो

और प्रश्नों के विस्तार में मत जाओ, प्यास की गहराई में जाओ। प्रश्न गहरे नहीं होते, प्रश्न विस्तृत होते हैं। प्यास विस्तृत नहीं होती, प्यास गहरी होती है। प्रश्नों का एक्सटैंशन होता है, प्यास इंटेंसिव होती है। एक प्रश्न, दो प्रश्न, पचास प्रश्न, लाख प्रश्न हो सकते हैं। प्यास लाख नहीं होती। प्यास एक ही होती है, और गहरी हो जायेगी, और गहरी हो जायेगी, और गहरी हो जायेगी। प्रश्न लंबे होते चले जायेंगे, बहुत हो जायेंगे, प्यास एक ही होती है, गहरी होती चली जाती है। एक सीमा पर प्यास इतनी घनी हो जाती है कि तब तुम प्रश्न नहीं चाहते, तब तुम कुछ जानना नहीं चाहते। कोई चीज आपको तृप्त नही कर सकती कि कोई बता दे, ऐसा है, वैसा है।

तो, मैंने यह अनुभव किया और पूरे मुल्क में अनेक लोगों से मिल कर मुझे यह अनुभव आया कि सारे प्रश्न करीब-करीब ऐसे हैं, जैसे स्कूलों में होते हैं। जैसे परीक्षा के प्रश्न होते हैं एकेडेमिक, जिनका जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं, फिजूल, जिनसे कोई मतलब नहीं। उनका कोई मूल्य नहीं है। मैं उनके उत्तर में उत्सुक नहीं हूँ। पिछले जन्म हों न हों, इससे मुझे कोई मतलब नहीं है।

मतलब मुझे इससे है कि अभी तुममें एक जन्म है, एक जीवन है हाथ में, अभी एक क्षमता है। इस क्षमता के बीच तुम्हें बोध है कि दुःख बड़ा है, अशांति है, पीड़ा है, परेशानी है। इसको दूर करने के उपाय की फिक्र करो। उसको ही पूछो। जगह-जगह से, तरफ-तरफ से उसको ही खोदो। उसी से सारे का सारा चैतन्य, सारा केन्द्रीय-करण उसी पर लगा दो और अपने भीतर, जो सबसे बड़ा जो तुम्हें कारण दिखाई पड़ता हो, दुःख का, उसका निरीक्षण करने लग जाओ।

किसी को क्रोध मालूम होगा, किसी को लोभ मालूम होगा। वह जो खास केरेक्टरस्टिक हो तुम्हारे दुःख की, जिसके केन्द्र पर तुम्हारी सारी पीड़ा घूम रही है, जिसके केन्द्र की वजह से तुम

अशान्त हो, उसके निरीक्षण में लग जाओ। उसी पर पूरे केन्द्रित होकर, काम करने में लग जाओ। तो उसी काम से तुम्हें उत्तर आने शुरू होंगे और उनके भी उत्तर आ जायेंगे, जिनका उस काम करने से सीधा सम्बन्ध नहीं मालूम होता। अगर उत्तर चाहते हैं, तो प्रश्नों की फिक्र छोड़ो और कुछ साधना के क्रम में थोड़े-से अपने को संयुक्त कर लो। और अगर उत्तर नहीं चाहते हैं, तो फिर बहुत ग्रन्थ हैं, और बहुत उत्तर देने वाले हैं, उनसे उत्तर इकट्ठे करो, तुम एक पण्डित होकर मर जाओगे, जो बहुत-से उत्तर जानता था, लेकिन जिसके पास उत्तर नहीं था। जो बहुत उधार की बातें जानता था, लेकिन जिसके पास अपना कुछ भी नहीं था। तथाकथित ज्ञानी और पण्डित से दरिद्र आदमी दूसरा नहीं होता, ये जो सो काल्ड विचारक समझे जाते हैं, इनसे ज्यादा दयनीय और दरिद्र आदमी दूसरा नहीं होता। इनका कोई उत्तर अपना नहीं है। यह सब सुना हुआ, सब सड़ा हुआ दोहरा रहे हैं, दोहरा रहे हैं, ये सब मुर्दा हैं। फिर कोई अर्थ नहीं।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—मैं यह कह रहा था कि हम अपने भीतर एक चित्र बनाये हुए हैं अपना ही, बड़ा भव्य एक चित्र बनाये हुए हैं अपना ही। वह भव्य चित्र हमारा, हमें जीवन भर धोखा देता है। उसकी वजह से, हम अपने में कोई बुराई कभी स्वीकार नहीं कर पाते, कोई गलती नहीं देख पाते, कोई दाग नहीं देख पाते। तो अपनी कल्पना से, अपने भव्य चित्र को खण्डित कर दें, उसे उठा कर फेंक दें। क्या मुझे होना चाहिए, इसकी फिक्र छोड़ दें, क्या मैं हूँ, इसको जानें। हम सब एक आदर्श से पीड़ित हैं और इसलिए एक अभिनय में पड़े हुए हैं। हम सब एक आदर्श कल्पना अपनी बनाये हुए हैं कि मैं ऐसा आदमी हूँ, मैं वैसा आदमी हूँ। वही कल्पना हमें धोखा दिये रहती

है, क्योंकि उस कल्पना के कारण जब भी हममें कोई बुराई होती है, हम मान नहीं सकते कि हममें है। हम समझते हैं, किसी और की वजह से हममें है।

अभी मैं एक प्रोफेसर से बात कर रहा था। वह बोले—कुछ क्रोध ऐसे होते हैं, जो कि क्रोध हैं ही नहीं। वह बोले, बिलकुल ही ठीक क्रोध। मैंने कहा, क्रोध तो कोई ठीक नहीं हो सकता। इस शब्द से झूठा शब्द नहीं हो सकता। कोई क्रोध ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि कोई अन्धेरा कहे कि कुछ अन्धेरे ऐसे होते हैं जो प्रकाश होते हैं, नासमझी की बात हो गयी। कुछ अन्धे ऐसे होते हैं जिनको दीखता है, बिलकुल फिजुल की बात हो गयी। यह तो कोई मतलब की बात नहीं है, यह तो विरोधी शब्द हैं।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—हाँ, सभी क्रोध करने को, आप कोई न कोई बेसिस मानते हैं, यह सच्चा है। और सच्चा मानते हैं, इसलिए कि क्रोध करने की तरकीब खोज रहे हैं। तरकीब जो हमारे दिमाग की है, वह यह है कि क्रोध हमें करना है और अपना जो कल्पना में, जो हमने चित्र बना रखा है भव्य और दिव्य, उसको भी कायम रखना है, तो फिर हम वह जो बेसिस है उसको कहेंगे, वह बिलकुल ठीक है और हमारे योग्य है कि हम क्रोध करें इस वक्त। हमारी दिव्यता क्रोध करने से खण्डित न हो, इसलिए क्रोध करने के कारण को हम, ठीक से यह दावा करेंगे। यहीं तो भूलें छिपी हैं।

तो मेरा कहना है कि पहले अपने भीतर, जो एक प्रतिमा बना रखी है, वह खण्डित कर दें। उसकी फिक्र छोड़ें, उसको जानने लगें, जो कि आप असलियत में हैं और तब आप बड़े अजीब मालूम होंगे। हो सकता है आप सोचते हों कि मेरे जैसा अच्छा पति नहीं है। जरा गौर से अपने भीतर देखियेगा, तो आप पाइयेगा, आप

कौन से पति हैं, काहे के अच्छे हैं। शायद आप सोचते हों, मुझसे बेहतर कोई पिता नहीं है। जरा गौर से देखिये, आप में पिता जैसा क्या है और कहाँ के पागलपन में पड़े हैं। यह जो भ्रम हम किये हुए हैं कि हम ऐसे हैं, हम वैसे हैं, तो थोड़ा उठा कर पर्दे को देखिए जो आप हैं, तो आप पायेंगे, शायद वहाँ पिता जैसा कुछ भी नहीं है, पति जैसा वहाँ कुछ भी नहीं है और घबराहट इसलिए होगी कि आपका चित्र टूटना शुरू हो जायेगा।

लेकिन साधक को इससे गुजरना होगा। यही तपश्चर्या है। यही कष्ट है जो सहना पड़ेगा **उसे और अपनी सारी दिव्य प्रतिमा को खण्डित करके वह जैसा नग्न, अनैतिक जैसा है, उसको जानना होगा**। जब वह अपने को जानेगा, जैसा वह है तो उसमें फर्क होने शुरू हो जायेंगे, क्योंकि जो बुराई उसमें दिखाई पड़ेगी, अब उसको सहना कठिन हो जायेगा। दिखती नहीं थी कि इसलिए सहता था, दिखेगी तो सहना कठिन हो जायेगा। यानी **किसी बुराई को देखने लगता उससे मुक्त होने का रास्ता बन जाता है**। तो अपने को हम हमेशा उल्टे काम में लगाए हुए हैं। हम हमेशा यह सिद्ध करने में लगे हुए हैं कि हमारी जो आदर्श कल्पना है, अपने बाबत बड़ी सच है। चौबीस घण्टे हम उसी को सिद्ध करने में, सब तरफ से लगे हुए हैं। अगर कोई हमारी निन्दा करे तो हम उसका विरोध करेंगे। अगर कोई हमें गाली दे, तो हम उसका प्रतिवाद करेंगे। अगर कोई हमारे विरोध में कुछ कहे, तो हम उसका प्रतिरोध करेंगे, ताकि हमारी प्रतिमा खण्डित न हो।

एक साधु था, वह एक गाँव के बाहर ठहरा हुआ था। युवा था और सुन्दर था। तो गाँव में एक स्त्री, एक युवती गर्भवती हो गयी। और उससे लोगों ने पूछा, दबाव डाला तो उसने कहा, यह साधु का बच्चा है। बच्चा उसे हुआ, सारा गाँव कुपित हो गया। उन्होंने

जाकर बच्चा उस साधु के ऊपर पटक दिया। उसने पूछा, क्या बात है? उन लोगों ने कहा, यह तुम्हारा बच्चा है। वह बोला इज इट सो?–ऐसा है क्या?—वह बच्चा रोने लगा, तो उसे वह सम्हालने में लग गया। लोगों ने गाली बकी, अपमान किया और चले गये।

वह दोपहर को भीख माँगने निकला, उस बच्चे को लेकर, लेकिन उसको कौन भीख देता। तो सारे गाँव में अफवाह फैली थी और उस पर हँसी-मजाक और व्ययं कसा जा रहा था। जहाँ से निकले, लोग भीड़ बना कर खड़े हैं और देख रहे हैं, हँसी उड़ा रहे हैं कि यह साधु है और अपने बच्चे को भी लिये हुए है। अब उसको भूख भी लगी है। बच्चे के लिए दूध भी चाहिए और बच्चा रो रहा है, वह बेचारा सारे गाँव में माँग रहा है। कौन उसको भिक्षा देगा? कोई भिक्षा उसे नहीं मिली।

वह उस घर के सामने गया जिस घर की लड़की का वह बच्चा था। उसने वहाँ भी आवाज दी। उसने कहा, मुझे भीख न दो, बाकी इस बच्चे को भीख दे दो। इसको दूध मिल जाय तो बहुत—जिस लड़की का यह बच्चा था, उसके लिए सहना कठिन हो गया। वह इनटालरेबल हो गया। उसने अपने पिता से कहा, मुझे क्षमा करें, मैंने झूठ कह दिया। साधु का तो कोई सम्बन्ध नहीं है इससे। यह मैंने असली बाप को बचाने के लिए, साधु का नाम ले लिया। मैंने सोचा था कि मामला खत्म हो जायेगा साधु का, आप भगा-वगा कर वापस लौट आओगे। यह जो हालत हो रही है, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी।

पिता बोला, अरे! उसने कहा भी नहीं कि यह मेरा बच्चा नहीं है। उस नासमझ को कहना तो चाहिए था। वे सारे लोग नीचे गये, उसके हाथ-पैर जोड़े। वह बोला, क्या बात है? उससे जब वे बच्चा छीनने लगे, तो बोला, क्या बात है? तो उन्होंने कहा, यह

बच्चा तुम्हारा नहीं है। वह बोला, इज इट सो? ऐसा मामला है, क्या बच्चा मेरा नहीं है? जब साँझ को लोगों ने उससे पूछा कि तुम कैसे पागल हो? तुमने सुबह ही क्यों नहीं कह दिया। वह बोला, जब इतने लोग कहते हैं तो ठीक होगा।

असल में अपनी कोई उसकी कल्पना ही नहीं है, कोई प्रतिमा नहीं है, जिसको बचाना है। यह कोई प्रतिमा नहीं है कि मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ और यह मेरा कैसे हो सकता है? यह कोई प्रतिमा नहीं है अपनी। तुम कहते हो, तो यही ठीक होगा। तुम गलती पर होंगे, तो तुम्हीं अपनी गलती ठीक कर लेना। मैं कहाँ जिम्मेवार हूँ, उसको ठीक करने का। अगर तुम मुझे व्यभिचारी और दुराचारी समझोगे, तो यह भी ठीक है, क्योंकि मुझे इसकी भी रक्षा नहीं करनी है। जो आदमी इस भाँति अपने ही चित्रों और प्रतिमाओं को छोड़ दे, उसको मैं साधु कहता हूँ। आम तौर से जो हम साधु देखते हैं, वह अपनी-अपनी प्रतिमा रखता है। वह कुछ है, इसकी पूरी फिक्र रखता है। वह यह सिद्ध करने की चौबीस घण्टे कोशिश में है कि वह कुछ है। जिसने यह कोशिश छोड़ दी सिद्ध करने की, मैं कुछ हूँ और जैसा निपट है, वैसा होने को राजी हो गया, तो उसको मैं साधु कहता हूँ।

उस दिशा से जो चलेगा वह आत्म-निरीक्षण में गतिमान होगा। वह एक दिन जरूर उसको जान लेगा। झूठा दम्भ और मिथ्या व्यक्तित्व अपने में खड़ा करने की बात नहीं। इससे बड़ी दिक्कत होगी। इससे मैं देखता हूँ कि हमारे प्रश्न कहीं कुछ ठीक नहीं हो पाते। अभी मैं ऐसा ही देखता हूँ, आप कुछ पूछना चाहते हैं, कुछ और पूछते हैं, क्योंकि जो पूछना चाहते हैं, कहीं उससे ऐसा पता न चल जाय कि आप में यह मामला भी है। मैं बड़ा हैरान हूँ।

मैं कलकत्ता में एक मीटिंग में बोलता था। एक सज्जन ने ब्रह्मचर्य पर एक किताब लिखी है। बड़ी किताब लिखी है, बड़ी प्रशंसित हुई।

उन्होंने मुझे किताब भेंट की। लेकिन ब्रह्मचर्य पर मैंने कुछ कहा, जैसी मेरी अपनी धारणा थी। उनको कुछ प्रश्न पूछना था, लेकिन बड़ी मुसीबत में पड़ गये। वे खड़े होकर बोले, मेरे एक मित्र हैं, वह ब्रह्मचर्य साधना चाहते हैं। लेकिन उनसे सधता नहीं। तो क्या करें?

मैंने उनसे पूछा, वह मित्र हैं आपके, कि आप ही हैं, पहले मैं यह समझ लूँ। वह बहुत घबड़ा गये। बोले कि नहीं मेरे एक मित्र हैं। मैंने कहा कि मित्र की फिक्र छोड़िये, उन मित्र को लाइए। रास्ता जरूर है, रास्ता जरूर है, लेकिन उन मित्र को ले आइए, क्योंकि मैं आपको समझाऊँ, आप उनको समझाएँ, बड़ा गड़बड़ हो जायेगा। आप मित्र को ले आइए, मैं उनको समझा दूँगा।

वह बड़े बेचैन हुए, जब मैं चला आया। उन्होंने मुझे चिट्ठी लिखी कि क्षमा करें, तकलीफ मेरी है, लेकिन मैं साहस नहीं कर सका पूछने का। तो मैंने उनको लिखा कि साहस आप कर सकते थे, अगर वह ब्रह्मचर्य की आपने किताब न लिखी होती। वह दिक्कत हो गयी न, वह जो एक किताब लिखी है, एक प्रतिमा हो गयी कि मैं जो कि इतना जानने वाला ब्रह्मचर्य का हूँ, तो मैं पूछूँ किसी से, तो कोई कहेगा, अरे! आपको साधने की, आपको खुद भी दिक्कत है?

यह जो तकलीफ है, मैं साधुओं से मिलता हूँ, साधु मुझसे सबके सामने बात नहीं करना चाहते। भीड़ में हों, तो मुझसे मिलना नहीं चाहते। चाहते हैं, एकान्त में, अलग में उनसे मिलूँ, क्योंकि उनकी तकलीफें वही हैं, जो कि सबके सामने नहीं कह सकते हैं। अकेले में वह मुझसे यही पूछते हैं कि ब्रह्मचर्य कैसे सधे? चित्त अशान्त रहता है तो कैसे, चित्त में क्रोध आता है तो क्या करें? यह अगर सबके सामने मुझसे पूछेंगे, तो वह जो प्रतिमा अपनी उन्होंने खड़ी कर रखी है, चारों तरफ कि वे बड़े शान्तचित्त हैं, वे बड़े मुश्किल में पड़ जायेंगे। क्योंकि वे पूछते हैं कि अशान्ति कैसे मिटे? तो लोग समझेंगे, अभी शान्तचित्त नहीं हुए।

तो हम एक असली आदमी, अगर सामने न रख सकें, तो हम उस असली आदमी में फर्क कैसे कर सकेंगे ? हम एक झूठे आदमी को सामने रखे हुए हैं और असली आदमी को पाना चाहते हैं—आत्मा को पाना चाहते हैं और एक नकल, एक अभिनय, एक एक्टिंग चारों तरफ खड़ी किये हुए हैं। तो वह नहीं हो सकेगा। मेरा मानना है कि इसमें घबराने की कोई जरूरत नहीं है। जिन्दगी के सीधे प्रश्न पूछना बन्द हो गये हैं। लोग—कोई पूछेगा आत्मा है, परमात्मा है, इनसे कोई मतलब नहीं है आपको।

आपके मतलब के प्रश्न कुछ और हैं जो आपकी जिन्दगी पीड़ित किये हुए हैं और परेशान किये हुए हैं। जिनकी वजह से आप दिक्कत में पड़े हुए हैं, जिनका परिवर्तन आपकी समझ में आ जाय तो क्रांति हो जाय।

लेकिन वह कोई नहीं पूछेगा। क्योंकि उनको कैसे पूछे, क्योंकि वह हमको खोल देंगे और हमारे बाबत जाहिर कर देंगे। जिन्दगी के असली प्रश्न हम पूछते ही नहीं और नकली प्रश्न पूछे चले जाते हैं। मेरा जोर इसी बात पर है कि जिन्दगी के असली प्रश्न पकड़ें। यह सब बकवास है, इससे कोई मतलब नहीं है। असली प्रश्न पकड़ें। मुसीबत क्या है ? मेरी दिक्कत क्या है ? मैं कहाँ उलझा हूँ ? में कहाँ परेशान हूँ ? मेरा दुःख कहाँ है ? उसको केन्द्रित करें, उसको पकड़ें। उसके बाबत सोचे, उसके बाबत विधि को समझें, उस पर प्रयोग में लग जायँ। और बड़े मजे की बात यह है कि इस भाँति जो प्रयोग में लगेगा वह हो सकता है, एकदम से ऐसा भी न दिखे कि धार्मिक है, क्योंकि न आत्मा की बात करता है, न परमात्मा की बात करता है, न पुनर्जन्म की बात करता है। लेकिन बड़े रहस्य की बात यह है कि इस भाँति जो जिन्दगी को पकड़ कर, काम में लग जायेगा, वह एक दिन उस जगह पहुँच जायेगा, जहाँ आत्मा और परमात्मा सब जान लिये जाते हैं।

अभी कल रात जो मैंने कहा, वह मैंने यही कहा कि महावीर ने किसी से जाकर नहीं पूछा कि आत्मा है या नहीं, कि पुनर्जन्म है या नहीं। वह वहाँ बैठ कर जंगल में, क्या यह सोचते होंगे कि आत्मा है या नहीं ? कभी यह सोचा आपने, क्या सोचते होंगे ? यह बैठ कर सोचते होंगे, आत्मा है या नहीं, कि पुनर्जन्म है या नहीं ? नहीं, कुछ नहीं सोचते। क्रोध पर काम कर रहे हैं, सेक्स पर काम कर रहे हैं। काम इन पर चल रहा है। काम आत्मा-वात्मा पर थोड़े ही चलता है। वह बारह वर्ष की तपश्चर्या है। काम किस पर कर रहे हैं ? कोई आत्मा पर काम कर रहे हैं या कोई पुनर्जन्म का पता लगा रहे हैं ? कि निगोद का पता लगा रहे हैं ? कि अनादि जगत कब बना इसका पता लगा रहे हैं ? वे कुछ नहीं पता लगा रहे हैं, काम कर रहे हैं क्रोध पर, काम कर रहे हैं सेक्स पर, काम कर रहे हैं लोभ पर। वहाँ काम कर रहे हैं। उसी काम के माध्यम से, एक दिन स्थिति आती है कि ये सब विसर्जित हो जाते हैं। यह सब जब विसर्जित हो जाते हैं, तो उसका अनुभव होता है जो आत्मा है। बातचीत आत्मा की है, काम आत्मा पर नहीं करना है कुछ। काम किसी और ही चीज पर करना है। पर हम आत्मा के बाबत पूछे चले जायेंगे। इसका कोई मतलब नहीं है।

३ : प्रेम की सुगन्ध

मेरे प्रिय आत्मन्,

आज की संध्या, आपके बीच उपस्थित होकर, मैं बहुत आनंदित हूँ। एक छोटी-सी कहानी से, आज की चर्चा को, मैं प्रारम्भ करूँगा।

बहुत वर्ष हुए, एक साधु मरण-शय्या पर था। उसकी मृत्यु निकट थी और उससे प्रेम करने वाले लोग, उसके पास इकट्ठे हो गये थे। उस साधु की उम्र सौ वर्ष थी और पिछले पचास वर्षों से, सैकड़ों लोगों ने उससे प्रार्थना की कि उसे जो अनुभव हुए हों, उन्हें वह एक शास्त्र में, एक किताब में लिख दे। हजारों लोगों ने उससे यह निवेदन किया था कि वह अपने आध्यात्मिक अनुभवों को, परमात्मा के सम्बन्ध में, सत्य के सम्बन्ध में, उसे जो प्रतीतियाँ हुई हों, उन्हें एक ग्रन्थ में लिख दे। लेकिन वह हमेशा इनकार करता रहा था और आज सुबह उसने यह घोषणा की थी कि मैंने वह किताब लिख दी है, जिसकी मुझसे हमेशा माँग की गयी थी और आज मैं अपने प्रधान शिष्य को वह किताब भेंट कर दूँगा।

हजारों लोग उत्सुक होकर बैठे थे कि वह किताब भेंट की जायेगी, जो कि मनुष्य-जाति के लिए, हमेशा के लिए काम की होगी। उसने एक किताब अपने प्रधान शिष्य को भेंट की और उससे कहा, इसे सम्हाल कर रखना। इससे बहुमूल्य शास्त्र कभी भी लिखा नहीं गया है, इससे महत्त्वपूर्ण कभी कोई किताब नहीं लिखी गयी। और जो लोग सत्य की खोज में होंगे, उनके लिए यह मार्गदर्शक प्रदीप

सिद्ध होगी। इसे बहुत सम्हाल कर रखना। इसे मैंने पूरे जीवन के अनुभव से लिखा है।

उसने वह किताब अपने शिष्य को दी और सारे लोगों ने धन्यवाद में सिर झुकाये। लेकिन उस शिष्य ने क्या किया! सर्दी के दिन थे और वहाँ आग जलती थी। उसने उस किताब को आग में डाल दिया। आग ने उस किताब को पकड़ लिया और वह राख हो गयी। सारे लोग हैरान हो गये कि यह क्या किया। लेकिन लोग देख कर हैरान हुए, वह मरता हुआ साधु अत्यंत प्रसन्न था। उसने उठकर उस शिष्य को गले लगा लिया और उससे कहा, अगर तुम उस किताब को बचा कर रख लेते, तो मैं बहुत दुःखी होकर मरता, क्योंकि मैं समझता कि एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है मेरे पास, जो यह जानता हो, सत्य शास्त्रों में उपलब्ध नहीं हो सकता। तुमने किताब को आग में डाल दिया, इससे मैं प्रसन्न हूँ। कम-से-कम एक व्यक्ति मेरी बात को समझता है।

यह बात कि सत्य शास्त्रों में उपलब्ध नहीं हो सकता, कम-से-कम एक के अनुभव में है। और उसने कहा, यह भी स्मरण रखो, अगर तुम उस किताब को आग में न डालते और मेरे मरने के बाद देखते, तो बहुत हैरान हो जाते। उसमें कुछ लिखा हुआ नहीं था। वह कोरे कागज थे।

और मैं आपसे कहूँगा, आज तक धर्मग्रन्थों में कुछ भी लिखा हुआ नहीं है, वह सब कोरे कागज हैं। जो लोग उनमें कुछ पढ़ लेते हैं, वे गलती में पड़ जाते हैं। जो गीता में कुछ पढ़ लेगा या कुरान में कुछ पढ़ लेगा या बाइबिल में कुछ पढ़ लेगा, वह गलती में पड़ जायेगा। स्मरण रखना, उन शास्त्रों में कुछ भी लिखा हुआ नहीं है। और जो आप पढ़ रहे हैं, वह आप अपने को पढ़ रहे हैं, उन शास्त्रों को नहीं।

और जिन सम्प्रदायों को आप खड़े कर लेते हैं और सत्य के जिन पंथों को आप निर्मित कर लेते हैं, वह क्राइस्ट के और कृष्ण के बनाये हुए नहीं हैं। बुद्ध और महावीर के बनाये हुए नहीं हैं। वह आपके निर्माण हैं, वह आपकी बुद्धि और आपके विचार से उत्पन्न हुए हैं। इन सारे पंथों का निर्माण, इन सारे पंथों का जन्म आपसे हुआ है। उनसे नहीं, जिन्होंने सत्य को जाना है। क्योंकि जो सत्य को जानता है, वह किसी सम्प्रदाय को जन्म कैसे दे सकता है? जो सत्य को जानता है, वह मनुष्य के भीतर विभाजन की रेखाएँ कैसे खड़ी कर सकता है? जिसने सत्य को जाना है, उसके लिए तो सारे भेद और सारी दीवालें गिर जाती हैं। लेकिन सत्य के नाम पर खड़े हुए ये सम्प्रदाय तो दीवालों को और भेदों को खड़े किये हुए हैं। ये सारे भेद, मेरे और आपके द्वारा निर्मित किये हुए हैं।

आज की संध्या मैं आपसे यह कहना चाहूँगा कि जो व्यक्ति सत्य की खोज करना चाहता हो—और ऐसा कोई भी व्यक्ति खोजना मुश्किल है, जो किसी-न-किसी रूप में सत्य की खोज में न लगा हो—उसे इन सारे शास्त्रों को, इन सारे सम्प्रदायों को, इन सारे विचार के पन्थों को छोड़ देना होगा। इन्हें छोड़ कर ही कोई सत्य के आकाश में गति कर सकता है। जो इनसे दबा है, इनके भार से दबा है, वह पर्वत पर नहीं चढ़ सकेगा। वह इतना भारी है कि उसका ऊपर उठना असम्भव है।

सत्य को पाने के लिए निर्भार होना अत्यन्त जरूरी है। जो लोग भारग्रस्त हैं, वे सत्य की ऊँचाइयों पर नहीं उड़ सकेंगे। उनके पंख टूट जायेंगे और नीचे गिर जायेंगे। हम यदि उत्सुक हैं और चाहते हैं कि सत्य का कोई अनुभव हो, लेकिन मैं आपसे यह कहूँ कि जो व्यक्ति सत्य के अनुभव को उपलब्ध नहीं होगा, उसके जीवन में न तो संगीत होता है, न उसके जीवन में शान्ति होती है, न उसके जीवन में कोई आनन्द होता है।

ये इतने लोग दिखाई पड़ते हैं—अभी रास्ते से मैं आया, और भी हजारों रास्तों से निकलना हुआ है। लाखों लोगों के चेहरे दिखाई पड़ते हैं, पर कोई चेहरा ऐसा दिखाई नहीं पड़ता, जिसके भीतर संगीत हो। कोई आँखें ऐसी दिखाई नहीं पड़ती कि जिनके भीतर कोई शान्ति हो। कोई भाव ऐसा प्रदर्शित नहीं होता कि भीतर आलोक का और प्रकाश का अनुभव हुआ हो।

हम जीते हैं, लेकिन इस जीवन में कोई आनन्द, कोई शान्ति और कोई संगीत अनुभव नहीं होता। सारी दुनिया एक तरह की विसंगति से भर गयी है, सारी दुनिया के लोग ऐसी पीड़ा और सन्ताप से भर गये हैं कि उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा है, जो ज्यादा विचारशील हैं, उन्हें दिखाई पड़ता है कि जीवन का तो कोई अर्थ नहीं है। इससे तो मर जाना बेहतर है। और, बहुत-से लोगों ने पिछले पचास वर्षों में, बहुत-से विचारशील लोगों ने आत्महत्याएँ की हैं। वे लोग नासमझ नहीं थे, जिन्होंने अपने को समाप्त किया है।

जीवन की यह जो स्थिति है, आज जावन की यह जो परिणति है, आज जीवन का जो दुःख और पीड़ा है, इसे देख कर, कोई भी अपने को समाप्त कर लेना चाहेगा। ऐसी स्थिति में, केवल नासमझ ही जी सकते हैं। ऐसी पीड़ा और तनाव को, केवल अज्ञानी ही झेल सकते हैं। जिसे थोड़ा भी बोध होगा, वह अपने को समाप्त कर लेना चाहेगा। इसका तो अर्थ यह हुआ कि जिनको बोध होगा, वे आत्म-हत्या कर लेंगे? लेकिन महावीर ने, बुद्ध ने आत्महत्या नहीं की और क्राइस्ट ने आत्महत्या नहीं की। कन्फ्यूशियस और लाओत्से ने आत्म-हत्या नहीं की। दुनिया में ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने आत्महत्या के अतिरिक्त एक और मार्ग सोचा और जाना।

मनुष्य के सामने दो ही विकल्प हैं—या तो आत्महत्या है, या आत्मसाधना है। जो व्यक्ति इन दोनों में से कोई विकल्प नहीं चुनता,

उसे जानना चाहिए कि वह एक व्यर्थ के बोझ को ढो रहा है। वह जीवन को अनुभव नहीं कर पायेगा। वह करीब-करीब मृत है, उसे जीवित भी नहीं कहा जा सकता।

क्राइस्ट के जीवन का एक उल्लेख है—वह एक गाँव से गुजर रहे थे। और, एक मछुए को उन्होंने मछलियाँ मारते देखा। वे उसके पीछे गये, उसके कन्धे पर हाथ रखा और उस मछुए से कहा, तुम कब तक मछलियाँ मारने में जीवन गँवाते रहोगे ? मछलियाँ मारने के अलावा भी, कुछ और है। और क्राइस्ट हमारे कन्धे पर भी हाथ रख कर यही पूछ रहे हैं कि कब तक तुम मछलियाँ मारते रहोगे ? उसने लौट कर देखा उनकी आँखों में और उसे प्रतीत हुआ कि जीवन में मछलियाँ मारने से भी ज्यादा कुछ है, जो पाया जा सकता है। उनकी गवाही क्राइस्ट की आँखें थीं। उसने कहा, मैं तैयार हूँ। जिस रास्ते पर आप ले चलना चाहें, मैं चलूँगा। क्राइस्ट ने कहा, मेरे पीछे आओ। उसने जाल को वहीं फेंक दिया और क्राइस्ट के पीछे गया। वह गाँव के बाहर भी नहीं निकल पाया था कि किसी ने आकर खबर दी कि तुम्हारा पिता जो बीमार था, उसकी अभी-अभी मृत्यु हो गयी है। तुम घर लौट चलो। उसका अंतिम संस्कार करके जहाँ भी जाना हो, चले जाना। उस मछुए ने क्राइस्ट से कहा कि मैं जाऊँ, अपने पिता की अंत्येष्टि कर आऊँ, फिर मैं लौट आऊँगा। क्राइस्ट ने एक बड़ी अद्‌भुत बात कही, 'लेट दी डैड बरी देयर डैड'—मुर्दों को, मुर्दे दफनाने दो। तुम मेरे पीछे आओ। यह वचन बहुत अद्‌भुत है। उन्होंने यह कहा—मुर्दे मुर्दे को दफना लेंगे, तुम मेरे पीछे आओ।

हम सबकी गिनती उन्होंने मुर्दों में की, और सारी जमीन पर बहुत कम लोग जीवित हैं, अधिक लोग मुर्दे ही हैं। तीन अरब लोग हैं अभी, इनमें अधिक लोग मुर्दे हैं, मुश्किल से कोई आदमी जीवित है।

यह मैं क्यों कह रहा हूँ, आपसे कि मुर्दे हैं ? हम तब तक मुर्दे ही हैं, हम मरे हुए ही लोग हैं जो किसी भाँति जी रहे हैं और चल रहे हैं; हम लाशों की भाँति है, जो चल रही हैं। हम तब तक लाशों की भाँति होंगे, जब तक हमें वास्तविक जीवन का पता न चल जायेगा।

वह व्यक्ति जीवित कैसे हो सकता है, जिसे जीवन के मूल स्रोत का कोई पता न हो ? वह व्यक्ति जीवित कैसे कहा जा सकता है, जिसे अपने भीतर, जो जीवन की धारा बह रही है, उसमें उसकी कोई प्रतिष्ठा न हो ? **वह व्यक्ति जीवित कैसे हो सकता है, या कैसे जीवित कहा जा सकता है, जिसे उस तत्त्व का कोई पता न हो, जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती है ?** मेरे भीतर, आपके भीतर, सबके भीतर वह तत्त्व भी मौजूद है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती।

हमारे भीतर दोहरे प्रकार का व्यक्तित्व है–एक जो मर जायेगा, दूसरा जो शेष रहेगा। जो व्यक्ति अपने को इतना ही मानते हों कि मरण पर उनकी समाप्ति हो जाती है, वे जीवित नहीं हो सकते, वे जीवित नहीं कहे जा सकते। अपने भीतर, उस जीवन को अनुभव करने के बाद ही कोई जीवित होता है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं होती। और ऐसे तत्त्व के अनुसंधान का नाम सत्य की खोज है।

सत्य की खोज कोई बौद्धिक, तार्किक खोज नहीं है कि हम कुछ विचार करें और गणित करें। सत्य की खोज किन्हीं शास्त्रों की खोज, किन्हीं विद्याओं के सीख लेने की बात नहीं है। सत्य की खोज अपने भीतर अमृत की खोज है। जो व्यक्ति अपने भीतर अमृत को उपलब्ध होता है, केवल वही सत्य को जानता है और जो व्यक्ति अमृत को उपलब्ध नहीं होता, उसके जीवन में सब असत्य है, सब झूठ है, उसके जीवन में कुछ भी सार्थक नहीं है।

हमारी दिशा, हमारे सोचने-विचारने की, हमारी साधना की, हमारे जीवन की दिशा, यदि अमृत की तलाश में संलग्न होती हो,

अगर हम उस दिशा में थोड़े चलते हों, अगर हमारे कदम उस रास्ते पर थोड़े पड़ते हों और हमारे चरण उस मार्ग पर जाते हों तो जानना चाहिए कि हम जीवन की तरफ विकसित हो रहे हैं। अन्यथा हमारी प्रत्येक घड़ी, हमारी मौत को करीब लाती है और हम मर रहे हैं।

मैं जिस दिन पैदा हुआ, उसी दिन से मरना शुरू हो गया हूँ। **मैं रोज मरता जा रहा हूँ और अगर मैं जीवन के कुछ ऐसे सत्य को अनुभव न कर लूँ, जो इस मरने की क्रिया के बीच, जो स्थिर हो, जो इस मरने की क्रिया के बीच मर न रहा हो, तो मेरे जीवन का क्या मूल्य हो सकता है?** या मेरे जीवन में कौन-सा अर्थ और कौन-सा आनन्द उपलब्ध हो सकता है?

जो लोग मृत्यु पर केन्द्रित हैं या जो लोग अपने भीतर केवल उसे जानते हैं जो मरणधर्मा हैं, वे आनन्द को अनुभव नहीं कर सकेंगे। आनन्द की अनुभूति, अमृत की अनुभूति की उत्पत्ति है। आनन्द को जान कर ही कोई अमृत को जानता है। इसलिए हमने अपने देश में, या जिन लोगों ने, कहीं की जमीन पर कभी जाना है, उन्होंने परमात्मा को आनन्द का स्वरूप माना है।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसको आप खोज लेंगे। परमात्मा आनन्द की चरम अनुभूति है। उस अनुभूति में आप कृतार्थ हो जाते हैं और सारे जगत के प्रति आपके मन में एक धन्यता का बोध पैदा हो जाता है। आप में कृतज्ञता पैदा होती है। उस कृतज्ञता को ही मैं आस्तिकता कहता हूँ। ईश्वर को मानने को नहीं, वरन् अपने भीतर एक ऐसे आनन्द को अनुभव करने को कि उस आनन्द के कारण आप सारे जगत के प्रति कृतज्ञ हो जायँ।

वह जो कृतज्ञता का, वह जो ग्रेटीट्यूट का, अनुभव है, वही और वही परम आस्तिकता है। ऐसी आस्तिकता की खोज, जो मनुष्य नहीं

कर रहा है, वह अपने जीवन के अवसर को व्यर्थ खो रहा है। यह चिन्तनीय और विचारणीय है और यह हर मनुष्य के सामने एक प्रश्न की तरह खड़ा हो जाना चाहिए, यह असंतोष, हर मनुष्य के भीतर पैदा हो जाना चाहिए कि वह खोजे और जीवन को गँवा न दे।

लेकिन, सारी दुनिया हम दो तरह के लोगों में बँट गयी है। एक तो वे लोग हैं, जो मानते ही नहीं कि कोई आत्मा है, कोई परमात्मा है। दूसरे वे लोग हैं जो मानते हैं कि परमात्मा है और आत्मा है। ऐसे दोनों प्रकार के लोगों ने खोजें बन्द कर दी हैं। एक वर्ग ने स्वीकार कर लिया है कि परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है, इसलिए खोज का कोई प्रश्न नहीं है। दूसरे वर्ग ने स्वीकार कर लिया है कि आत्मा है, परमात्मा है, इसलिए उनके लिए भी खोज का कोई कारण नहीं रह गया। आस्तिक और नास्तिक दोनों ने खोज बन्द कर दी है। विश्वासी भी खोज बन्द कर देता है, अविश्वासी भी खोज बन्द कर देता है।

खोज तो केवल वे लोग करते हैं, जिनकी जिज्ञासा मुक्त होती है और जो किसी विश्वास से, किसी पंथ से, किसी विचार की पद्धति से, किसी आस्तिकता से, किसी नास्तिकता से अपने को बाँध नहीं लेते। वे लोग धन्य हैं, जिनकी जिज्ञासा मुक्त है। जिनका संदेह मुक्त हो, जो सोच रहे हों और जिन्होंने दूसरों के विचार को स्वीकार न कर लिया हो।

मैं अभी एक गाँव में अपने एक मित्र के साथ गया था। बहुत धूप थी। रास्ता बहुत गर्म था। उनके जूते कहीं खो गये थे, कोई चुरा ले गया था। तो मैंने उनसे कहा, दूसरी चप्पल पहन लें। वे बोले, दूसरे की पहनी हुई चप्पलें मैं कैसे पहनूँ? मैंने उनसे कहा, दूसरे के पहने हुए जूते कोई पहनना पसन्द नहीं करता। दूसरे के पहने हुए कपड़े पहनना कोई पसन्द नहीं करता; लेकिन दूसरों के अनुभव किये हुए विचार सारे लोग स्वीकार कर लेते हैं। दूसरे के उतारे कपड़े और दूसरे के बासी भोजन को कोई स्वीकार नहीं करेगा, लेकिन हम सारे लोगों ने दूसरों

के बासे विचार स्वीकार कर लिये हैं—फिर चाहे वे विचार बुद्ध के हों, महावीर के हों, चाहे किसी के हों। या वे कितने ही पवित्र पुरुष के विचार क्यों न हों, अगर वे दूसरों के अनुभव हैं और उनको हमने स्वीकार कर लिया है, तो हम स्वयं सत्य को जानने से वंचित हो जायेंगे।

इस जगत में केवल वे ही लोग—केवल वे ही थोड़े से लोग, सत्य को अनुभव कर पाते हैं, जो किसी के विचार को स्वीकार नहीं करते। जो किसी की उधार-चिन्तनाओं को अंगीकार नहीं करते और जो अपने मन के आकाश को, अपने मन के चिन्तन को मुक्त रख पाते हैं।

बहुत कठिन है अपने चिन्तन को मुक्त रख पाना। अगर आप अपने भीतर देखेंगे तो शायद ही एकाध विचार ऐसा मालूम होगा, जो आपका अपना हो—वे सब संगृहीत मालूम होंगे, वे सब दूसरों से लिए हुए मालूम होंगे। और ऐसी विचार-शक्ति, जो दूसरों के लिये हुए विचारों से दब जाती है, सत्य के अनुसन्धान में असमर्थ हो जाती है। कोई व्यक्ति दूसरों के जितने ज्यादा विचार स्वीकार कर लेता है, उतनी उसकी विचारशक्ति नीचे दब जाती है। जो व्यक्ति, जितना दूसरों के विचार अस्वीकार कर देता है, उतनी उसके भीतर की विचारशक्ति जाग्रत होती है और प्रबुद्ध होती है। सत्य पाने के लिए, स्मरणीय है कि किसी का विचार, कितना ही सत्य क्यों न प्रतीत हो, अंगीकार के योग्य नहीं है।

जो व्यक्ति इतना साहस करता है कि सारे विचारों को दूर हटा देता है, उसके भीतर, जैसे कोई कुआँ खोदे और सारी मिट्टी और पत्थरों को अलग कर दे, तो नीचे से जल के स्रोत उत्पन्न हो जाते हैं, वैसे ही कोई व्यक्ति अगर अपने भीतर से, सारे पराये विचारों को अलग कर दे, दूर हटा दे, तो उसके भीतर विचारशक्ति का, विवेक का, प्रज्ञा का जन्म होता है। उसके भीतर जल-स्रोत उपलब्ध होते

हैं। उसकी स्वयं की शक्ति जागती है और उस स्वयं की शक्ति के जागरण में ही सत्य के अनुभव की सम्भावना है।

एक दफा ऐसा हुआ कि बुद्ध के पास कुछ लोग एक अन्धे को लेकर गये। उन्होंने कहा, इस अन्धे आदमी को हम बहुत समझाते हैं कि प्रकाश है, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता। बुद्ध ने कहा, धन्य है यह अन्धा आदमी! इसकी सम्भावना है कि यह कभी आँख को खोज ले। लोगों ने कहा, यह आप क्या कहते हैं! हम इसे समझाते हैं हजार तरह से कि प्रकाश है, लेकिन यह मानने को राजी नहीं होता। बुद्ध ने कहा, धन्य है, यह अन्धा आदमी! इसकी सम्भावना है कि यह कभी प्रकाश को खोज ले। अगर इसने प्रकाश को मान लिया, दूसरों की आँखों के अनुभव को मान लिया, तो इसकी अपनी आँख की खोज बन्द हो जायेगी। बुद्ध से उन्होंने कहा कि आप इसे समझाएँ कि प्रकाश है। बुद्ध ने कहा, यह पाप मैं नहीं करूँगा। मैं इसे यह नहीं समझा सकता कि प्रकाश है। मैं इसे यह जरूर बता सकता हूँ कि आँखें खोलने का उपाय है। बुद्ध ने कहा, मेरे पास इसे मत लाओ। किसी विचारक की इसे जरूरत नहीं है, इसे किसी वैद्य के पास ले जाओ और इसे कोई विचार मत दो, कोई उपदेश मत दो। इसे उपचार की जरूरत है, इसे चिकित्सा की जरूरत है। वह अन्धा एक वैद्य के पास ले जाया गया। भाग्य की बात, कुछ ही महीनों के इलाज से उसकी आँखें ठीक हो गयीं। वह नाचता हुआ आया और बुद्ध के पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा, प्रकाश है, क्योंकि मेरे पास आँख है। आँख ही प्रकाश का प्रमाण है, और कोई भी प्रमाण नहीं है। और जो दूसरे की आँखों पर निर्भर हो जायेंगे, उनकी सम्भावना बन्द हो जायेगी कि वे स्वयं की आँखों को उपलब्ध हो सकें।

इस समय जमीन पर सत्य की शोध बन्द है। उसका कारण यह नहीं है कि लोग सत्य के विपरीत चले गये हैं। उसका कारण यह है

कि लोग शास्त्रों के बहुत पीछे चले गये हैं। उसका कारण यह नहीं है कि सत्य की दिशा में उनकी प्यास समाप्त हो गयी है, बल्कि इसका कारण यह है कि वे यह भूल गये हैं कि दूसरों के बहुत ज्यादा विचारों का बोझ उनकी स्वयं की विवेक की ऊर्जा को पैदा नहीं होने देता है। उनकी स्वयं की अन्तर्शक्ति जाग नहीं पाती है।

सत्य की खोज में जो लोग उत्सुक हैं, उनके लिए पहली बात होगी कि वे सारे पराये विचारों को अस्वीकार कर दें। वे इनकार कर दें। खाली और शून्य होना बेहतर है, बजाय दूसरों के उधार विचारों से भरे होने के। नग्न होना बेहतर है, बजाय दूसरों के वस्त्र पहन लेने के, अन्धा होना बेहतर है, बजाय दूसरों की आँखों से देखने के। यह सम्भावना पहली बात है। इस भाँति व्यक्ति की जिज्ञासा मुक्त होती है और विचार-शक्ति जागती है।

विचार-शक्ति का जागरण, पहली शर्त तो यह मानना है। और दूसरी एक बात बहुत जरूरी है, जो कि विचारशील लोगों को समझनी चाहिए। वह यह कि विचार की शक्ति बड़ी अद्भुत है और वह बड़े विपरीत मापदण्डों से, बड़ी विपरीत परिस्थितियों में पैदा होती है।

साधारणतः लोग सोचते हैं कि आदमी जितना विचार करेगा, उतनी ज्यादा विचार की शक्ति जाग्रत होगी। लेकिन यह गलत है। जो आदमी, जितना निर्विचार होने की साधना करेगा, उतनी उसकी विचार की शक्ति जाग्रत होती है। विचार आप क्या करेंगे ? अब भी आप विचार करेंगे, तब आप दूसरों के विचारों को दोहराते रहेंगे। जब भी आप विचार करेंगे, तब आपकी स्मृति, आपकी मेमोरी उपयोग में आती रहेगी।

अधिकतर लोग स्मृति को ही ज्ञान समझ लेते हैं, स्मृति को ही विचार समझ लेते हैं। जब आप सोचते हैं, तब आपके भीतर गीता

बोलने लगती है, महावीर और बुद्ध बोलने लगते हैं। जब आप सोचते हैं, तो आपका धर्म, आपकी शिक्षाएँ, जो आपको सिखायी गयी हैं, आपके भीतर बोलने लगती हैं। तब सचेत हो जाना चाहिए। ये विचार नहीं हैं। यह बिलकुल यांत्रिक स्मृति है, यह बिलकुल मेकेनिकल मेमोरी है, जो भर दी गयी है और बोलना शुरू कर रही है। इसको जो विचार समझ लेगा, वह गलती में पड़ जायेगा। जो इसका अनुसन्धान करेगा, वह विचार से विचार में भटकता रहेगा और समाप्त हो जायेगा। उसे सत्य का कोई अनुभव नहीं होगा।

फिर विचार के लिए क्या करना होगा ? विचार की शक्ति को जिसे जगाना है, उसे विचार करना छोड़ना होगा। और उसे निर्विचार में ठहरना होगा।

हम इस निर्विचारणा की स्थिति को अपने देश में समाधि कहते हैं। जो निर्विचार में ठहर जाता है, जो थॉटलेसनेस में—जहाँ कोई विचार नहीं है, ऐसी निष्कम्प अवस्था में ठहर जाता है—जैसे किसी भवन में कोई दिया जलता हो और कोई हवाएँ न आती हों और दिये की बाती बिलकुल ठहर जाय, ऐसे ही जब कोई व्यक्ति अपनी चेतना को, अपनी कांशसनेस को, अपनी अवेयरनेस को, अपने होश को ठहरा लेता है और उसमें कोई कम्प नहीं आते—उस निर्विचार, निष्कंप क्षण में उसके भीतर विचार की चरम शक्ति का जागरण होता है। और तब जो देख पाता है, उसे आँखें मिलती हैं। समाधि से आँखें मिलती हैं और व्यक्ति सत्य को देख पाता है। **सत्य सोचा नहीं जाता, देखा जाता है।**

पश्चिम में जिसे फिलासफी कहा जाता है, भारत में हम उसे दर्शन कहते हैं। दर्शन और फिलासफी पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। जो लोग समझते हैं कि फिलासफी और दर्शन एक ही बात है, उनका जानना बिलकुल गलत है। दर्शन का चिन्तन से कोई सम्बन्ध नहीं है,

दर्शन का सम्बन्ध तो अचिन्त्य हो जाने से है। दर्शन का सम्बन्ध समाधि से है, तर्क से नहीं है, विचार से नहीं है। निर्विचार हो जाने से है और पश्चिम की फिलासफी का सम्बन्ध चिन्तन से है, विचार से है। पश्चिम की फिलासफी विचार है, भारत का दर्शन निर्विचार होना है।

हमने अपने मुल्क में एक अद्भुत बात साधी और एक बहुत अद्भुत प्रयोग किया। हमने यह प्रयोग किया कि अगर मनुष्य की सारी चिन्तना बन्द हो जाय, तो क्या होगा ? जब मनुष्य के सारे विचार बन्द हो जायेंगे तो क्या होगा ? जब मनुष्य कुछ भी नहीं सोच रहा होगा, तब क्या होगा ? यह बड़ी अद्भुत बात है। जब आप कुछ भी नहीं सोच रहे हैं, तब आपको दिखाई पड़ना शुरू होता है। जब चिन्तन बन्द होता है, तो दर्शन उपलब्ध होता है। जब विचार की लहरें बन्द होती हैं, तो आँखें इतनी स्वच्छ होती हैं कि वह देख पाती हैं। जब विचार चलते रहते हैं, तो देखना मुश्किल हो जाता है। हम विचार से इतने भरे हैं कि करीब-करीब अन्धे हैं, हमको कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

मेरे एक मित्र सारी दुनिया का चक्कर लगा कर लौटे। उन्होंने बहुत झीलें देखीं, बहुत प्रपात देखे। फिर वे मेरे गाँव में आये। मैंने उनसे कहा कि गाँव के पास भी एक प्रपात है, वह मैं दिखाने ले चलूँ ? वे बोले, मैंने बहुत बड़े-बड़े प्रपात देखे हैं, इसको देखने से क्या होगा। मैंने कहा, अगर उन प्रपातों का विचार आप छोड़ दें, तो यह प्रपात भी देखने में अद्भुत है। अगर उन प्रपातों का विचार आप छोड़ दें और वह आपकी आँख में तैरते न रहें, तो आपको यह प्रपात भी दिखाई पड़ेगा और यह बहुत अद्भुत है।

वे मेरे साथ गये, दो घण्टे हम उस प्रपात पर थे, लेकिन उन्होंने एक क्षण भी उस प्रपात को नहीं देखा। वह मुझे बताते रहे, अमरीका

में कोई प्रपात कैसा है, स्विटजरलैंड में कोई प्रपात कैसा है। उन्होंने कहाँ-कहाँ प्रपात देखे, इसकी चर्चा करते रहे। दो घण्टे के बाद जब हम वापस लौटे तो वह मुझसे बोले, बड़ा सुन्दर प्रपात था।

मैंने कहा, यह बिलकुल झूठ कह रहे हैं। इस प्रपात को आपने देखा नहीं। यह प्रपात आपको दिखाई नहीं पड़ा और मुझे अनुभव हुआ कि मैं एक अन्धे आदमी को लेकर आ गया हूँ।

वह बोले, मतलब ? मैंने कहा, आप उन प्रपातों के विचार से इतने भरे थे, आपकी आँखें इतनी बोझिल थीं, आपका चित्त इतना कम्पित था, आपके भीतर इतनी स्मृतियाँ घूम रही थीं कि उन सबके पार इस प्रपात को देखना असंभव था। इस प्रपात को देखने की जरूरत अगर अनुभव होती तो उन सारी स्मृतियों को, उन सारे विचारों को, उन सारे ख्यालों को छोड़ देने की जरूरत थी। जब वे छूट जाते, तो वह स्थान मिलता खाली और स्वच्छ, जहाँ से इसके दर्शन हो सकते थे।

केवल वे ही लोग, जगत में दर्शन को उपलब्ध होते हैं, जो निर्विचार देखना सीख जाते हैं।

जिनमें देखने की एक ऐसी क्षमता पैदा होती है जो विचार में नहीं, निर्विचार में है और तब ऐसे लोगों ने ही यह कहा है कि सारा जगत परमात्मा से आच्छन्न है। ऐसे लोगों ने जब दरख्तों को देखा होगा, जिनकी आँखें स्वच्छ और निर्मल हैं और जिनके चित्त विचार से ग्रस्त नहीं हैं, तो दरख्त ही दिखाई नहीं पड़ता, दरख्त के भीतर जो प्राण की सत्ता है, वह अनुभव में आ जाती है। और जब वह आपको देखेंगे, तो आपकी देह दिखाई नहीं पड़ती, बल्कि देह के पीछे जो आत्मा छिपी है, वह भी दिखाई पड़ जाती है।

जिनकी आँखें निर्मल हैं और स्वच्छ हैं और जिनके चित्त निर्विचार हैं और शान्त हैं, उन्हें इस जगत के कण-कण में परमात्मा का

अनुभव होना शुरू हो जाता है। जितनी गहरी दृष्टि उनकी होती जाती है, जितनी स्वच्छ और निर्मल, उतना ही यह जगत मिटता चला जाता है और परमात्मा का अनुभव शुरू हो जाता है।

एक घड़ी आती है जब इस जगत में जगत नहीं रह जाता, केवल ईश्वर रह जाता है। वह घड़ी आनन्द की घड़ी है, वह घड़ी परम धन्यता की घड़ी है। उस घड़ी के बाद आपके भीतर संगीत शुरू होता है। उसके बाद फिर आप भिखमँगे नहीं रह जाते, सम्राट हो जाते हैं। दरिद्र नहीं रह जाते। दुःख और पीड़ाएँ आपकी गिर जाती हैं और भीतर अत्यन्त वैभव की उपलब्धि होती है। उसे हम स्वर्ग कहें, मोक्ष कहें, निर्वाण कहें, उसे हम जो भी नाम देना पसन्द करें, दे सकते हैं। मात्र इतनी ही घटना घटती है कि आपको अपने भीतर सच्चिदानन्द का अनुभव होने लगता है।

यह अनुभूति यदि मनुष्य को न हो पाये और ऐसी सभ्यता और संस्कृति, जो इस अनुभूति की तरफ न ले जाती हो, वह झूठी है, वह मनुष्य-विरोधी है, वह घातक है, वह विषाक्त है और उसका जितनी जल्दी अन्त हो जाय, उतना बेहतर है। हमने अपने ही हाथों एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति को धीरे-धीरे जन्म दिया है, जो हमें इस अनुभूति से ले जाने में बाधा बन रही है। उस अनुभूति तक ले जाने में सहयोगी नहीं रह गई। वह अनुभूति जिस संस्कृति से पैदा हो, वही संस्कृति मानवीय हो सकती है। वही संस्कृति मनुष्य के हित में हो सकती है। वही संस्कृति कल्याण और मंगलदायी हो सकती है।

मैंने ये थोड़ी-सी-बातें आपसे कहीं। ये थोड़ी-सी बातें, मैंने इस आशा से कही हैं कि आप चाहें तो अपने माध्यम से, उस संस्कृति को जन्म देने में सहयोगी हो सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य सहयोगी हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य एक घटक है, सारे समाज का, सारो मनुष्यता का। जब मैं अपने को बनाता और बिगाड़ता हूँ तो मैं साथ ही

सारी मनुष्यता को बना और बिगाड़ रहा हूँ। जब मैं अपने भीतर शांति के आधार रखता हूँ, तो मैं सारी मनुष्यता के लिए शांति का मार्ग खोल रहा हूँ और जब मैं अपने भीतर अशांति और विषाद के बीज बोता हूँ, तो मैं सारी मनुष्यता के लिए वही कर रहा हूँ। जो मैं अपने साथ कर रहा हूँ, वह मैं अनजाने में सारी मनुष्य-जाति के साथ कर रहा हूँ, यह स्मरण होना जरूरी है। क्योंकि हम सारे लोग घटक हैं, इकाइयाँ हैं और हम बनाते हैं विश्व को। हम अपने को निर्मित करके सारे जगत को बनाते हैं।

आज दुनिया जो इतने युद्ध, इतनी हिंसा, इतनी घृणा, इतने वैमनस्य से भरी हुई है, इसके लिए कौन जिम्मेवार है? इसके लिए वे जिम्मेवार हैं, जिन्होंने परमात्मा का अनुसंधान छोड़ दिया है, अन्तरात्मा का अनुसंधान छोड़ दिया है। क्योंकि मेरा मानना यह है और मैं समझता हूँ, यह बात आपकी समझ में आ सकेगी कि जो व्यक्ति अपने भीतर आनन्द से भरा हुआ नहीं होता, वह व्यक्ति दूसरों को दुःख देने में आनन्द लेने लगता है।

यह दुनिया इतनी दुखी है, क्योंकि इतने दुःखी लोग हैं, आनन्द-शून्य और आनन्द-रहित कि उनका एक ही आनन्द रह गया है कि वह दूसरों को पीड़ित करें, परेशान करें, दुःखी करें। जब वे दूसरों को दुःखी देखते हैं, तो उन्हें अपने सुखी होने का थोड़ा-सा भ्रम पैदा होता है। और अगर ऐसा होता रहा, तो युद्ध बढ़ते जायेंगे, हमारे हाथ एक-दूसरे के गले पर कसते जायेंगे और हमारे हृदय कठोर और पत्थर होते जायेंगे। इसका अन्तिम परिणाम शायद यह हो कि हम सारे मनुष्यों को समाप्त कर डालें। हम उसकी तैयारी में हैं।

पिछले दो महायुद्धों में दस करोड़ लोगों की हमने हत्या की है। और कोई आदमी मुझे दिखाई नहीं पड़ता, जिसको यह ख्याल हो कि इन दस करोड़ लोगों की हत्याओं में हमारा हाथ है। और अभी हम

तैयारी कर रहे हैं और बड़ी हत्या की। शायद सामूहिक आत्मघात, एक यूनिवर्सल स्वीसाइड की तैयारी में हम लगे हैं।

यह कोई राजनीतिक वजह नहीं है इसके पीछे, और न कोई आर्थिक वजह है। इसके पीछे बुनियादी वजह आध्यात्मिक है। जो लोग अन्तर में आनन्द को अनुभव नहीं करेंगे, उनका अन्तिम परिणाम दूसरों को दुःख देना, दूसरों की मृत्यु में आनन्द लेना होगा। वे अन्ततः युद्ध में सुख लेंगे।

यह शायद आपको पता न हो, पिछले दो महायुद्धों के समय में एक अद्भूत बात सारे यूरोप में अनुभव हुई और वह यह थी कि जब युद्ध चलते थे तो लोगों ने आत्मघात बिलकुल नहीं किये। जब युद्ध चलते थे तो लोगों ने हत्याएँ बहुत कम कीं, डाकेजनी और चोरी कम हो गयी। मनोवैज्ञानिक हैरान हुए कि यह क्या वजह है? युद्ध चलता है, तो लोग आत्महत्या क्यों नहीं करते, युद्ध चलता है, तो लोग एक-दूसरे की हत्या क्यों नहीं करते, डाकेजनी और चोरियाँ और अनाचार कम क्यों हो जाता है? तो पता चला, युद्ध में इतनी हिंसा होती है कि उन सारे लोगों को काफी आनन्द मिल जाता है, दूसरी हिंसा करने की जरूरत उन्हें नहीं रह जाती।

जो लोग दुःखी होंगे, वे दुःख का संसार निर्मित करेंगे। क्योंकि यह कैसे संभव है कि जो मेरे भीतर हो, उसके अलावा मैं कुछ निर्मित कर सकूँ? आज दुनिया में अगर घृणा दिखाई पड़ती है, वैमनस्य दिखाई पड़ता है, तो यह कोई ऊपरी बातें नहीं हैं, ये केवल लक्षण हैं कि भीतर आनन्द नहीं है। अगर भीतर आनन्द हो, तो आनन्दित आदमी के जीवन में एक घटना घटती है कि जो व्यक्ति जितने आनन्द से भरता जाता है, उतना ही वह दूसरों को आनंदित करने की प्रेरणा से भी भर जाता है। आनंदित व्यक्ति किसी को दुःखी नहीं कर सकता। आनंदित व्यक्ति के लिए असंभव है कि वह दूसरे को पीड़ा दे और

उसमें सुख माने। उसका तो सारा जीवन आनन्द को बाँटना बन जाता है।

ब्लावट्स्की ने सारी दुनिया की यात्रा की। वह भारत मे थी, और दूसरे मुल्कों में थी। लोग हमेशा देख कर हैरान हुए, वह एक झोला अपने साथ रखती थी और जब गाड़ियों में बैठती, तो उसमें से कुछ निकाल कर बाहर फेंकती रहती। लोग उससे पूछते कि यह क्या है? वह कहती, कुछ फूलों के बीज हैं। अभी वर्षा आयेगी, फूल खिलेंगे, पौधे निकल आयेंगे।

लोगों ने कहा, लेकिन तुम इस रास्ते पर दुबारा निकलोगी, इसका तो कुछ पता नहीं। उसने कहा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। फूल खिलेंगे, कोई उन फूलों को देखकर आनन्दित होगा, यह मेरे लिए काफी आनन्द है।

उसने कहा, जीवन भर बस एक ही कोशिश की, जब से मुझे फूल मिले हैं, तब से फूल सबको बाँट दूँ, बस यही चेष्टा रही है। और जिस व्मक्ति को भी फूल मिल जायेंगे, वह उनको बाँटने के लिए उत्सुक हो जायेगा।

आखिर बुद्ध या महावीर क्या बाँट रहे हैं? जितने वर्ष तक बुद्ध जीवित रहे, क्या बाँटते रहे हैं? किस चीज को बाँटने लिए भाग रहे हैं और दौड़ रहे हैं? कोई आनन्द उपलब्ध हुआ है, उसे बाँटना जरूरी है। साधारण आदमी, दुःखी आदमी, सुख को पाने के लिए दौड़ता है और जो व्यक्ति प्रभु को अनुभव करता है, वह सुख को बाँटने के लिए दौड़ने लगता है। **साधारण आदमी, सुख को पाने के लिए दौड़ता है और जो व्यक्ति प्रभु को अनुभव करता है, वह सुख को बाँटने के लिए दौड़ने लगता है।**

एक की दौड़ का केन्द्र वासना होती है, दूसरे की दौड़ का केन्द्र करुणा हो जाती है। आनन्द करुणा को उत्पन्न करता है और जितना

आनन्द भीतर फलित होता है, उतनी आनन्द की सुगन्ध चारों तरफ फैलने लगती है। आनन्द की सुगन्ध का नाम प्रेम है। **जो व्यक्ति भीतर आनन्दित होता है, उसका सारा आचरण प्रेम से भर जाता है।** व्यक्ति अन्तर में आनन्द को उपलब्ध हो, तो आचरण में प्रेम प्रकट होने लगता है। आनन्द का दिया जलता है, तो प्रेम की किरणें सारे जगत में फैलने लगती हैं। और यदि दुःख का दिया भीतर हो, तो सारे जगत में अन्धकार फैलता है—वह घृणा का हो, वैमनस्य का हो।

यह संस्कृति, यह सभ्यता जिसमें हम जी रहे हैं, अत्यन्त जरा-जीर्ण है और मृत्यु के कगार पर खड़ी है। जिनको थोड़ा भी होश है, वह इस पर विचार करेंगे। अगर वे विचार करेंगे तो मेरी बातों में, उन्हें कोई सार्थकता दिखाई पड़ सकती है। तब उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा, एक ही कर्तव्य, वह मनुष्य-जाति के बदलने का नहीं, स्वयं को बदलने और परिवर्तित करने का। उनके सामने एक ही कर्तव्य होगा कि वह अपने भीतर दुःख को विलीन कर दें, विसर्जित कर दें और आनन्द को उपलब्ध हो जायँ।

मैंने बताया है, कैसे वह आनन्द को उपलब्ध हो सकेंगे ? यदि वे निर्विचारणा को साधते हैं, तो उन्हें दर्शन उपलब्ध होगा, तब यह जगत उन्हें पदार्थ दिखाई नहीं पड़ेगा, प्रभु दिखाई पड़ने लगेगा। और अगर यह जगत, सारा प्रभु से आन्दोलित दिखाई पड़ने लगे, अगर यहाँ मुझे सारे लोगों के भीतर परमात्मा का अनुभव होने लगे, तो मेरे जीवन का आनन्द—उसकी क्या सीमा रह जायेगी ? क्योंकि जब किसी व्यक्ति को, किसी दूसरे व्यक्ति में परमात्मा अनुभव होता है और जब किसी व्यक्ति को स्वयं में परमात्मा का अनुभव होता है, तो सारी जगत-सत्ता से एक हो जाता है। उसके प्राण सारी जगत-सत्ता से मिल जाते हैं। वह सारी जगत-सत्ता से संगीत का एक स्वर हो जाता है और तब उसका जीवन, तब उसकी चर्या, तब उसका उठना-बैठना,

तब उसका सोचना-विचारना, तब उसके समस्त जीवन-उपक्रम आनन्द को बाँटने लगते हैं, विस्तीर्ण करने लगते हैं।

सत्य की खोज, कोई बौद्धिक जिज्ञासा मात्र नहीं है, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के प्राणों के प्राणों की प्यास है। जो व्यक्ति इस प्यास को अनुभव नहीं कर रहा है या इस प्यास की उपेक्षा कर रहा है, वह अपनी मनुष्यता का अपमान कर रहा है। वह अपनी सबसे गहरी प्यास को, सबसे गहरी भूख को अधूरी छोड़ रहा है। इसके दुष्परिणाम उसे भोगने पड़ेंगे। हम सारे लोग, अन्तरात्मा की जो प्यास है, उसकी उपेक्षा करने का दुष्परिणाम भोग रहे हैं। यह दुष्परिणाम मिट सकता है—थोड़े विवेक के जागरण से, थोड़े विवेक के अनुकूल जीवन की साधना को उपलब्ध होने से, थोड़ा विवेक के अनुकूल और प्रकाश के अनुकूल अपने को व्यवस्थित करने से, इस तरह दुर्भाग्य विलीन हो सकता है।

ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं हैं। इस आशा में नहीं कि मैं जो कहूँ, वह आप मान लें। क्योंकि मैं आपका शत्रु नहीं हूँ कि कुछ विचार आपके मस्तिष्क में डाल दुँ। इस आशा में ये बातें नहीं कही हैं। इन बातों को आप देखेंगे, मान नहीं लेंगे। इन बातों के प्रति जाग्रत होंगे, इन्हें स्वीकार नहीं कर लेंगे। इन बातों की सचाई अगर आपको अनुभव हो, तो उसे अनुभव करेंगे, लेकिन इन विचारों को अपने भीतर नहीं रखेंगे। कोई विचार कितना ही मूल्यवान हो, फेंक देने जैसा है। हाँ, उसमें जो अन्तर्दृष्टि है, अगर वह आपके भीतर जग जाय तो काम हो गया। तो मैंने यह जो थोड़ी-सी बातें कही हैं, उनकी सचाई अगर आपको अनुभव हो तो यह आपके काम की हो जायेगी और अगर ये विचार आपके भीतर बैठ गये, तो मैं आपका बोझ और बढ़ाने में सहयोगी हूँ और वह बोझ वैसे ही बहुत काफी है। वह बोझ बहुत ज्यादा है और उस बोझ से आप इतने दबे हैं कि अब उस बोझ को बढ़ाने की और कोई जरूरत नहीं है।

दुनिया को अब किसी पैगम्बर की, किसी तीर्थंकर की, किसी अवतार की कोई जरूरत नहीं है। वे काफी हैं। दुनिया को किसी नये शास्त्र की, नये सम्प्रदाय की, नये धर्म की जरूरत नहीं है। वह जरूरत से ज्यादा हैं। उनका बोझ बहुत है। अब दुनिया में जरूरत इस बात की है कि आपके बोझ को उतारने का कोई विचार हो सके। आपको निर्मुक्त और निर्बन्ध करने का कोई विचार हो सके। आपकी यात्रा—चित्त की सरल और सहज बनाने का कोई उपाय हो सके। उस सम्बन्ध में ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं।

हो सकता है कोई बात आपके भीतर अन्तर्दृष्टि बन जाय। और अन्तर्दृष्टि बन जाय तो वह फिर आपकी हो जाती है, मेरी नहीं रह जाती। किसी और की नहीं रह जाती। ऐसी अन्तर्दृष्टि की कामना करता हूँ, ऐसे विचार की, ऐसी साधना की। मनुष्य के इस दुर्भाग्य को दूर करने की आत्मधारणा पैदा हो, आपमें ख्याल पैदा हों कि मनुष्य का यह दुर्भाग्य दूर हो सके। यह सामूहिक आत्मघात की जो तैयारी चलती है, हिंसा और घृणा का यह जो विकास चलता है, वह प्रेम में परिवर्तित हो सके।

लेकिन, यह प्रेम कोई जबरदस्ती आरोपित नहीं हो सकता कि आप सोचें कि हम प्रेम करें, या किसी से हम कहें कि तुम प्रेम करो, तो उसका क्या मतलब होगा? और इस भाँति, जो कोई प्रेम करेगा, वह प्रेम तो झूठा होता, उसमें कोई सचाई नहीं हो सकती। प्रेम किया नहीं जा सकता और जबरदस्ती उसे रोका नहीं सकता। प्रेम तो तब उपलब्ध होगा, जब आप आनन्द को उपलब्ध होंगे, जब आपके भीतर आनन्द होगा, आपके बाहर प्रेम होगा। आनन्द के फूल लगेंगे, तो प्रेम की सुगन्ध आपसे फैलनी शुरू हो जायेगी। वही सुगन्ध धार्मिक आदमी का लक्षण है। भीतर आनन्द हो, बाहर जीवन में सुगन्ध हो, प्रेम की सुगन्ध हो।

ईश्वर करे, आपको भीतर आनन्द उपलब्ध हो और बाहर प्रेम उपलब्ध हो जाय। उससे हम जगत को और स्वयं को बदलने में, और एक नयी मनुष्यता को जन्म देने में समर्थ और सफल हो सकते हैं।

मेरी इन बातों को आपने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुग्रहीत हूँ। अन्त में अपने भीतर बैठे हुए परमात्मा के लिए मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●

४ : आलोक का दर्शन

प्रश्न—अस्पष्ट है ।

उत्तर—कोई दूसरा प्रश्न पूछें, वह तीनों एक ही हैं । एक ही बात पूछी गयी है, उसकी मैं चर्चा कर लेता हूँ । और सच में, बहुत बातें पूछने को हैं भी नहीं । प्रश्न तो एक ही है कि मनुष्य आनन्द को कैसे खोजे ? आत्मा को कैसे खोजे ? सत्य को कैसे खोजे ? और मैंने आपसे कहा कि उस खोज का जो माध्यम है, वह निर्विचार होना है । समाधि के माध्यम से सत्य का अनुभव होता है या आत्मा का अनुभव होता है ।

समाधि का अर्थ है सारे विचारों का शून्य हो जाना । ये विचार कैसे शून्य हों, इसके दो रास्ते हैं । एक रास्ता तो यह है कि हम अपने भीतर विचार का पोषण न करें । हम सारे लोग विचार का पोषण करते हैं और संग्रह करते हैं । सुबह से साँझ तक, हम विचार को इकट्ठा करते हैं और इकट्ठा करने में, हम कभी यह भी ध्यान नहीं रखते कि हम कचरा इकट्ठा कर रहे हैं, फिजूल का कचरा इकट्ठा कर रहे हैं, या कोई सार्थक बात भी इकट्ठी कर रहे हैं ।

अगर मेरे घर में कोई कचरा फेंक जाय, तो मैं झगड़ा करूँगा; लेकिन अगर कोई आदमी आकर दो घण्टे मेरे दिमाग में कोई विचार फेंक जाय, तो मैं कोई झगड़ा नहीं करता । दुनिया में एक-दूसरे के मस्तिष्क में विचार फेंकने की पूरी स्वतन्त्रता है । इससे खतरनाक और कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती । क्योंकि मनुष्य का जितना घात

ये विचार कर सकते हैं, उतना और कोई चीज नहीं कर सकती । हम इस भाँति जाने-अनजाने, बिलकुल मूर्छित अवस्था में, विचारों को इकट्ठा करते रहते हैं । इन विचारों की पर्त पर पर्त, हमारे भीतर, पूरे चेतन-अचेतन मन पर इकट्ठी हो जाती है । उनकी इतनी गहरी दीवारें बन जाती हैं कि उनके भीतर प्रवेश करना मुश्किल हो जाता है । जब भी आप भीतर जायेंगे, वे ही विचार आपको मिल जायेंगे, आत्मा तक पहुँचना संभव नहीं होगा । ये विचार बीच में ही आपको रोक लेंगे, अन्दर नहीं जाने देंगे ।

हर विचार अटकाता है और रोकता है, क्योंकि विचार उलझा लेता है । जब भी आप अपने भीतर प्रवेश करेंगे, तभी कोई-न-कोई विचार आपको रोक लेगा, आप उसी के अनुसरण में लग जायेंगे । जब तक विचार बीच में रहेंगे तब तक आपको पीछे नहीं जाने देंगे, वहीं रोक लेंगे । **निर्विचार होने का आग्रह इसीलिए है कि जब तक आप निर्विचार न हो जायें तब तक भीतर गति नहीं हो सकती ।** आप बीच में जायेंगे, कोई विचार आपको अटका लेगा । आप उसी को सोचने में लग जायेंगे, बाहर आ जायेंगे । वह विचार आपको बहुत दूर ले जायेगा । उसके एसोसिएशंस होंगे, वह आपको दूर ले जायेगा । आप वहीं भटक जायेंगे, आप पूरे भीतर प्रवेश नहीं कर पायेंगे । हर आदमी भीतर जाता है, जितना ज्यादा विचारवान आदमी होता है, विचार से भरा होता है, उतने बाहर से ही लौट आता है । जितनी जल्दी कोई विचार उसको पकड़ लेता है, वह उतनी ही जल्दी वापस लौट आता है ।

ब्रिटिश विचारक डेविड ह्यूम ने लिखा है कि मैंने यह सुन कर कि भीतर प्रवेश करना चाहिए, बहुत बार भीतर प्रवेश करने की कोशिश की । लेकिन जब भी मैं भीतर गया, मुझे आत्मा तो नहीं मिली, कोई विचार मिल जाता था, कोई कल्पना मिल जाती थी,

कोई स्मृति मिल जाती थी। आत्मा नहीं मिली। मैं बहुत बार भीतर गया, ये ही मुझे मिले। उसने ठीक लिखा है। उसका अनुभव गलत नहीं है। आप भी अपने भीतर जायेंगे, तो यही मिल जायेंगे और ये आपको बाहर ले आयेंगे। तो जिसको भीतर जाना हो, पूरे भीतर जाना हो, उसे बीच की इन सारी बाधाओं को अलग कर देना जरूरी है।

तो, पहली बात यह है कि **जिसे निर्विचार होना हो, उसे व्यर्थ के विचारों को लेना बन्द कर देना चाहिए।** उसकी सजगता, उसके भीतर होनी चाहिए कि वह व्यर्थ के विचारों का पोषण न करे, उन्हें अंगीकार न करे, उन्हें स्वीकार न करे और सचेत रहे कि भीतर विचार इकट्ठे न हो जायँ। इसे करने के लिए जरूरी होगा कि विचारों में जितना भी रस हो, उसको छोड़ दें। हमें विचारों में बहुत रस आता है। अगर आप एक धर्म को मानते हैं, तो उस धर्म के विचारों में आपको बहुत रस आता है। जिसे निर्विचार होना हो, उसे विचारों के प्रति विरस हो जाना चाहिए, उसे किसी विचार में कोई रस नहीं रह जाना चाहिए। उसे यह सोचना चाहिए कि विचार से कोई प्रयोजन नहीं, इसलिए उसमें कोई रस रखने का कारण नहीं। कैसे वह विरस होगा, उन्होंने पूछा है कि कैसे यह संभव होगा?

यह संभव होगा विचारों के प्रति जागरूकता से। अगर हम अपने विचारों के साक्षी बन सकें, और यह बन सकना कठिन नहीं है। **अगर हम अपने विचारों की धारा को दूर खड़े होकर देखना शुरू करें, तो क्रमशः जिस मात्रा में आपका साक्षी होना विकसित होता है, उसी मात्रा में विचार शून्य होने लगते हैं।**

बुद्ध का एक शिष्य था श्रोण। वह राजकुमार था। मुझे उसकी कथा इसलिए प्रिय रही कि मैंने सारे मुल्क में बार-बार उसे कहा, और मुझे उसके मुकाबिले कोई भी बात नहीं दिखाई पड़ती। वह

राजकुमार था, वह दीक्षित होकर भिक्षु हो गया। पहले दिन वह जब भिक्षा माँगने जाने लगा, तो बुद्ध ने उससे कहा कि अभी तुझे भिक्षा माँगने का ज्ञान नहीं। कल तक राजकुमार था, आज भिक्षा के पात्र को लेकर जायेगा, पता नहीं, कैसा तुझे लगे, इसलिए मैंने अपनी एक श्राविका से कहा है कि जब तक तू भिक्षा के माँगने में निष्णात न हो जाय, तब तक भोजन वहीं कर लेना। अभी तू भिक्षा मत माँग, वहाँ जाकर भोजन कर आ।

वह राजकुमार श्रोण, जो कि संन्यासी हो गया था, उस श्राविका के घर भोजन करने गया। कोई दो मील का फासला था, वह रास्ते भर बहुत बातें सोचने लगा। उसे ख्याल आया उन भोजनों का, जो उसे प्रिय थे। उसने आज सोचा, आज पता नहीं कैसा अप्रिय भोजन मिले, कैसा अरुचिकर भोजन मिले, कैसा रूखा-सूखा मिले। उसे जो-जो प्रिय भोजन थे, वह सब स्मरण आये और यह भी ख्याल आया कि जब उनके मिलने की संभावना, इस जीवन में दुबारा नहीं है। लेकिन जब वह श्राविका के घर पहुँचा और भोजन के लिए बैठा, तो देख कर हैरान हुआ कि उसकी थाली में वे ही भोजन थे, जो उसे प्रिय थे। उसे बड़ी हैरानी हुई, उसे बहुत अचम्भा हुआ। फिर उसने सोचा, शायद यह संयोग की ही बात होगी कि आज ये भोजन बने हैं। उसने चुपचाप भोजन किया। जब वह भोजन कर रहा था, तो उसे यह ख्याल आया कि अब यह भोजन करने के बाद, फिर यह दो मील रास्ता दोपहरी में तय करना है। और आज तक ऐसा मैंने कभी नहीं किया। भोजन के बाद मैं विश्राम करता था। अब वह श्राविका पंखा करती थी, उसने कहा, भन्ते! अगर भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम करें, तो मुझ पर बड़ी कृपा होगी। वह फिर थोड़ा हैरान हुआ। उसे लगा कि मैंने सोचा था, संयोग की बात होगी, मैंने सोचा। उसी वक्त उसने एक चटाई डाल दी। लेटते ही उसे ख्याल

आया कि आज न अपनी कोई साया है, न कोई शैय्या है। वह श्राविका पीछे थी, उसने कहा, भन्ते! शैय्या न तो आपकी है, न मेरी है। न साया आपका है, न मेरा है।

वह घबड़ा कर बैठ गया, उसने कहा, बात क्या है, क्या मेरे विचार पढ़ लिये जाते हैं? उस श्राविका ने कहा, ध्यान का अभ्यास करने से, पहले तो अपने विचार दिखाई देने शुरू हुए, फिर अपने विचार समाप्त हुए, अब दूसरे के भी विचार दिखाई देने शुरू हो गये। वह उठ कर बैठ गया। उसने कहा, अब जाऊँ? उस श्राविका ने कहा, आप विश्राम करें, अभी न जायें।

उसने जाकर बुद्ध से कहा कि मैं कल से उस श्राविका के यहाँ भोजन करने नहीं जा सकता। बुद्ध ने कहा, क्या बात है? वह युवक कहने लगा, बात! मेरा कोई अपमान नहीं हुआ, बड़ा स्वागत हुआ, बहुत सम्मान हुआ, लेकिन मैं नहीं जाऊँगा, आप छोड़ दें उस बात को। उस श्राविका के यहाँ मैं नहीं जाऊँगा। बुद्ध ने कहा, बिना जाने मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? वह युवक बोला, जानने की बात यह है कि मैं उसके घर गया। वह विचार पढ़ने में समर्थ है और उस सुन्दर युवती को देख कर मेरे मन में विकार और वासना भी उठी, तो वह भी पढ़ ली गयी। अब मैं कल उसके द्वार पर कैसे जा सकता हूँ। और कौन-सा मुँह लेकर जाऊँगा?

बुद्ध ने कहा, मैंने जान कर तुझे वहाँ भेजा है। वही तुम्हारी साधना का हिस्सा है। कल भी तुम्हें वहीं जाना होगा और परसों भी तुम्हें वहीं जाना होगा। और उसके बाद के दिनों में भी तुमको जाना होगा—उस दिन तक, जब कि तुम उस द्वार से निर्विचार होकर न लौटो। मजबूरी थी, उस भिक्षु को वहाँ जाना पड़ा। बुद्ध ने कहा, एक स्मरण रखना, किसी विचार से लड़ना मत, किसी विचार से संघर्ष मत करना, किसी विचार के विरोध में खड़े मत होना। एक ही काम

करना कि जब तू रास्ते से जाये तो अपने भीतर सजगता रखना और जो भी विचार उठते हों, उनको देखते भी जाना। सिर्फ देखते हुए जाना और कुछ भी मत करना। तुम्हारा निरीक्षण, तुम्हारा आब्जर्वेशन बना रहे, तुम देखते रहो। अनदेखा कोई विचार न उठे, बेहोशी में कोई विचार न उठे। तुम्हारी आँख भीतर गड़ी रहे और तुम देखते रहो कि कौन विचार उठ रहे हैं। सिर्फ निरीक्षण करना, लड़ना मत।

वह युवक गया। जैसे-जैसे उस महिला का द्वार करीब आने लगा, मकान करीब आने लगा, उसकी घबराहट और बेचैनी बढ़ने लगी। जैसे-जैसे बेचैनी बढ़ने लगी, वैसे-वैसे वह सजग होने लगा। वैसे-वैसे भय का विन्दु करीब आने लगा। जैसे-जैसे लगने लगा, वह महिला करीब ही होगी, जो पढ़ सकती है, वैसे-वैसे वह अपनी आँख को भीतर खोलने लगा।

जब वह सीढ़ियाँ चढ़ता था, उसने पहली सीढ़ी पर पैर रखा, उसने अपने भीतर देखा, तो उसके भीतर कोई विचार नहीं। उसने दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा, भीतर बिलकुल सन्नाटा मालूम पड़ा। उसने तीसरी सीढ़ी पर पैर रखा, उसे दिखाई पड़ा, अपने आर-पार देख रहा हूँ, वह एकदम खाली पड़े हैं, वहाँ कोई विचार नहीं हैं। वह बहुत घबड़ाया। ऐसा उसने कभी अनुभव नहीं किया था कि बिलकुल विचार ही न हों और जब विचार बिलकुल न थे, तो उसे ऐसा लगा जैसे हवा हो गया हो, हल्का हो गया हो। वह गया और उसने भोजन किया। फिर नाचता हुआ वापस लौटा।

उसने बुद्ध के पैर पकड़ लिये। उसने बुद्ध से कहा, अद्भुत अनुभव हुआ। जब मैं उसकी सीढ़ियों पर पहुँच कर भीतर बिलकुल सजग हो गया, सचेत हो गया, होश से भर गया, तो मैं हैरान हो गया, एक भी विचार न था, सब विचार शून्य हो गये।

बुद्ध ने कहा, **विचार से शून्य होने का उपाय, विचार के प्रति पूरा सजग होना है**। जो व्यक्ति जितना सजग हो जायेगा, विचारों के प्रति, उतने ही विचार, उसी भाँति उसके मन में नहीं आते, जैसा घर में दिया जलता हो, तो चोर नहीं आते। घर में अन्धकार हो तो चोर घर के अन्दर आते हैं। भीतर जो होश को जगा लेता है, उतने ही विचार क्षीण हो जाते हैं। जितनी मूर्छा होती है भीतर, जितना सोया-पन होता है भीतर, उतना ज्यादा विचारों का आक्रमण होता है। जितना जागरण होता है, उतने ही विचार क्षीण हो जाते हैं।

निर्विचार होने का उपाय है, विचारों के प्रति साक्षीभाव को साधना। कोई एक क्षण में सध जायेगा, यह मैं नहीं कहता, एक दिन में सध जायेगा, यह भी नहीं कहता। लेकिन अगर निरन्तर प्रयास हो तो थोड़े ही दिनों में आपको पता चलेगा कि जैसे-जैसे आप विचारों को देखने लगेंगे—कभी घण्टे भर को किसी एकान्त कोने में बैठ जायँ और कुछ भी न करें, सिर्फ विचारों को देखें, कुछ भी न करें उनके साथ, कोई चेष्टा न करें सिर्फ उन्हें देखें अगर, तो देखते-देखते ही धीरे-धीरे आपको पता चलेगा कि वह कम हो रहे हैं। देखना जैसे-जैसे गहरा होगा, वैसे-वैसे वह बिन्दु दिखाई पड़ेगा। जिस दिन देखना पूरा हो जायगा, उस दिन आप अपने भीतर आर-पार देख सकेंगे। **जिस दिन आप की आँख बन्द होगी और आपकी दृष्टि पूरी की परी भीतर देख रही होगी, उस दिन आप पायेंगे, कोई विचार का कोलाहल नहीं, वे गये और जब वे चले गये होंगे, उसी शान्त क्षण से आपको एक अद्भुत दृष्टि, अद्भुत दर्शन, अद्भुत आलोक का अनुभव होगा। वह अनुभव ही सत्य का दर्शन है और वही अनुभव स्वयं का दर्शन है।**

स्वयं के माध्यम से ही सत्य जाना जाता है। और कोई द्वार नहीं है। स्वयं के द्वार से ही सत्य को जाना जाता है और सत्य को जान लेना, आनन्द में प्रतिष्ठित हो जाना है। असत्य में होना दुःख में

होना है, अज्ञान में होना है। सत्य की उस ज्ञान-दशा में आनन्द उपलब्ध होता है। आनन्द और आत्मा अलग न समझें, आनन्द और सत्य अलग न समझें, स्वयं और सत्य अलग न समझें। ऐसी प्रक्रिया का उपयोग, जो क्रमशः अपने जीवन में करेगा, वह कभी निर्विचार को अनुभव कर लेगा। निर्विचार को जो अनुभव कर लेता है, उसकी पूरी विचार की शक्ति जागृत हो जाती है, उसे आँख मिल जाती है। जैसे किसी ने अन्धेरे में प्रकाश कर दिया हो, जैसे किसी अन्धे को आँख मिल जाती है, वैसा उसे अनुभव होता है।

प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है और हकदार है। जो अपने अधिकार को माँगेगा उसे मिल जायेगा। जो उसे छोड़ेगा वह खो देगा।

आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं कि अगर हमें इंजोनियरिंग सीखनी हो, टेक्नालाजी सीखनी हो, तो हमें दूसरों के विचार स्वीकार करना होगा। लेकिन अगर हमें प्रेम सीखना हो, हमें दूसरों का विचार नहीं लेना होगा। टेक्नालाजी में और धर्म में यही अन्तर है। जो चीज सीखी जा सकती है, वह पदार्थ से सम्बन्धित है और जो चीज नहीं सीखी जा सकती है, वह पदार्थ नहीं है। परमात्मा को सीखा नहीं जा सकता, नहीं तो कोई स्कूल-कालेज खोलने से मामला आसान हो जाता।

इस बात को स्मरण रखिये कि साइन्स सीखा जा सकता है। साइन्स दूसरों के अनुभव का निचोड़ है, धर्म नहीं। धर्म अपना अनुभव है। यहीं धर्म और साइन्स बड़े विपरीत हैं। साइन्स हमेशा परम्परा है, धर्म परम्परा नहीं है। साइन्स वह है कि एक वैज्ञानिक दूसरे वैज्ञानिक के कन्धे पर खड़ा होता है। धर्म वह है कि अपने ही पैरों पर खड़ा होना होता है। न्यूटन को हटा दें, तो आइन्स्टीन को खड़े होने की जगह न रह जायेगी। महावीर, बुद्ध को हटा दें, फिर भी मैं खड़ा हो सकता हूँ। धर्म निजी और वैयक्तिक अनुभव है, साइन्स सामाजिक अनुभव है। इसलिए साइन्स सीखा जाता है। उसके कालेज

और विद्यालय हो सकते हैं। सत्य नहीं सीखा जा सकता। सत्य को तो स्वयं साधा जाता है। वह हमेशा निजी है। साइन्स की दिशा अलग है, धर्म की दिशा अलग। मैं सोचता हूँ, समय नहीं है, अन्यथा मैं उस पर और विस्तार से बात करता। फिर भी मैं समझता हूँ, शायद मेरी बात थोड़ी-बहुत साफ हो सकती है।

पूछा गया है कि जो आदमी विचार नहीं करते, क्या वह आत्म-ज्ञान और आनन्द को उपलब्ध होते हैं ?

बहुत अच्छी बात पूछी है। निर्विचार होने में और विचारहीन होने में फर्क है। निर्विचार होने का अर्थ है, विचारों का स्वयं त्याग किया। निर्विचार होने से विचारहीन नहीं हो जाते आप, परिपूर्ण विचार को उपलब्ध होते हैं। मैंने कहा, निर्विचारणा विचारशक्ति के परिपूर्ण जागरण का उपाय है। विचारहीन होने को नहीं कह रहा हूँ, निर्विचार होने को कह रहा हूँ। अविवेक के लिए नहीं कह रहा हूँ, पूरा विवेक जगाने के लिए कह रहा हूँ। पशुओं में विचारणा नहीं है, वे विचार नहीं कर पाते। मनुष्यों में विचार है, वे विचारहीनता को उपलब्ध होते हैं। इसलिए एकदम अबोध व्यक्ति और परिपूर्ण आदमी में समानताएँ होती हैं। एकदम अज्ञानी में और परम ज्ञानी में समानताएँ मालूम पड़ती हैं। और अनेक दफा भूल हो जाती है। उसका कारण है कि दो परिपूर्णताएँ एक जगह जाकर मिलती हैं। वह भी अबोध मालूम होगा। परम ज्ञानी भी अबोध मालूम होता है, अत्यन्त बोध के कारण। बहुत प्रकाश हो जाय, तो आँख अन्धी हो जाती है। अत्यधिक प्रकाश हो, तो आँख बन्द हो जाती है; बिलकुल प्रकाश न हो, तो अन्धकार हो जाता है।

लेकिन बहुत प्रकाश से पैदा हुआ जो अन्धकार है, उसकी गरिमा अलग है। इसी भाँति विचार से निर्विचार को उपलब्ध होना बहुत अलग बात है। वह विचारहीनता नहीं है, वह विचारशून्यता है।

प्रश्न—अस्पष्ट है।

उत्तर—ध्यान से मेरा प्रयोजन चित्त की ऐसी स्थिति से है, जहाँ कोई शंका, जहाँ कोई प्रश्न, जहाँ कोई जिज्ञासा शेष न रह जाय। हम जीवन-सत्य के सम्बन्ध में, कुछ-न-कुछ पूछ रहे हैं। ऐसा मनुष्य निरन्तर खोजना कठिन है, जो जीवन के सत्य के सम्बन्ध में किसी जिज्ञासा को न लिये हो। न तो हमें इस बात का कोई ज्ञान है कि हम कौन हैं, न हमें इस बात का कोई ज्ञान है कि हमारे चारों ओर फैला जगत क्या है। हम जीवन के बीच में अपने को पाते हैं, बिना किसी उत्तर के, बिना किसी समाधान के। चारों तरफ प्रश्न हैं और उनके बीच में मनुष्य अपने को घिरा हुआ पाता है। इन प्रश्नों में कुछ तो अत्यंत जीवन की बुनियाद से सम्बन्धित हैं, जैसे मैं क्यों हूँ ? मेरी सत्ता क्यों है ? मेरे होने की क्या आवश्यकता है ? क्या अनिवार्यता है ? और फिर मैं कौन हूँ ? और मैं जन्म हूँ या मैं मृत्यु हूँ ? जीवन का यह सारा व्यापार क्यों हैं ? यह जिज्ञासा, यह प्रश्न प्रत्येक व्यक्ति के मन में, चाहे वह किसी धर्म में पैदा हो, चाहे किसी देश में पैदा हो, उठता है।

इस जिज्ञासा को हल करने के दो रास्ते हो सकते हैं। एक रास्ता है फिलासफी या तत्त्वज्ञान का कि हम सोचें और विचार करें कि हम कौन हैं, किस लिए हैं और जीवन की पहेली के सम्बन्ध में, चिन्तन के माध्यम से समाधान खोजें। इस भाँति जो समाधान खोजा जायेगा, वह बौद्धिक होगा। विचार करके हम निर्णय करेंगे। पश्चिम ने वैसा रास्ता पकड़ा। पश्चिम में फिलासफी का जन्म चिन्तन के माध्यम से, विचार के माध्यम से, सत्य को जानने की चेष्टा से हुआ। भारत में फिलासफी जैसी कोई चीज पैदा नहीं हुई। जो लोग भारतीय दर्शन को भी फिलासफी कहते हैं, वह नितान्त भूल में हैं। वह शब्द पर्यायवाची नहीं। पश्चिम में उन्होंने सोचा कि विचार के बाहर, हम सत्य

के किसी निष्कर्ष पर पहुँच जायेंगे । पिछले ढाई हजार वर्षों में वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे । एक चिंतक दूसरे चिंतक से सहमत नहीं होता । एक चिन्तक युवा अवस्था में जो कहता है, बुढ़ापे में स्वयं ही उसे बदल देता है । आज जो कहा गया, कल वह परिवर्तित हो जाता है । चिन्तन शाश्वत और नित्य-सत्य पर नहीं ले जा सका ।

असल में विचार ले ही नहीं जा सकता है । विचार का अर्थ है, हम उन बातों के सम्बन्ध में सोच रहे हैं जो अननोन हैं, अज्ञात हैं । जैसे मुझे प्रीतिकर लगता है कि मैं कहूँ, जैसे अन्धा प्रकाश के सम्बन्ध में विचार करे । तो विचार करेगा क्या ? आँख जिसके पास नहीं है, उसके पास प्रकाश के सम्बन्ध में विचार करने का कोई उपाय भी नहीं है । कोई धारणा, कोई कन्सेप्ट, वह प्रकाश का नहीं बना सकता । उसका चिन्तन सब अन्धेरे में टटोलना हो जायेगा ।

शायद आपको यह ख्याल हो कि अन्धे को कम-से-कम अन्धेरा तो दीखता होगा । सोच सकता है, अन्धेरे के विपरीत जो है, वह सत्य होगा । लेकिन आपको स्मरण दिलाऊँ, अन्धे को अन्धेरा भी दीखता नहीं । अन्धे को अन्धेरा भी नहीं दीखता है, क्योंकि अन्धेरा देखने के लिए भी आँख चाहिए । न अन्धे को अन्धेरे का पता है, न प्रकाश का पता । उसे विपरीत का भी पता नहीं है । इसलिए प्रकाश के सम्बन्ध में कोई धारणा बनाने की सुविधा उसे नहीं है ।

जीवन-सत्य के प्रति लगभग हम अन्धे हैं । हम जो भी सोचेंगे, जो भी विचार करेंगे, वह हमें किसी समाधान पर ले जाने वाला नहीं है । इसलिए भारत ने एक बिलकुल नया दृष्टिकोण, एक नया द्वार खोलने की कोशिश की । वह द्वार चिन्तन का नहीं, दर्शन का है । वह फिलासफी का नहीं, दर्शन का है । दर्शन का अर्थ है, हम सत्य को देखना चाहते हैं । विचारना और देखना ये दोनों बहुत अलग बातें

हैं । हम सत्य को विचारना नहीं चाहते, हम विचार ही नहीं सकते, हम सत्य को देखना चाहते हैं ।

अगर देखना चाहते हैं, तो प्रश्न की भूमिका बदल जायेगी । तब तर्क सहयोगी न होगा । चिन्तन का सहयोगी है तर्क, लाजिक, और अगर दर्शन, देखना है तो तर्क सहयोगी न होगा । तब सहयोगी होगा योग । इसलिए पूरब में दर्शन के साथ योग विकसित हुआ, पश्चिम में फिलासफी के साथ तर्क विकसित हुआ । तर्क पृष्ठभूमि है, चिंतन की; योग पृष्ठभूमि है दर्शन की । देखने तक अगर प्रश्न अटक गया, तो सवाल यह नहीं है कि वहाँ ईश्वर या आत्मा जैसा कोई है । सवाल यह है कि मेरे पास उसके प्रति संवेदित होने को आँख तैयार नहीं है । असली सवाल तर्क का, सत्य का न होकर, आँख का हो जायेगा । अगर मेरे पास आँख है, तो जो भी है, उसे मैं देख सकूँगा और अगर मेरे पास आँख नहीं है, तो जो भी होगा, वह मेरे लिए अज्ञात हो जायेगा । इसलिए भारतीय दर्शन केन्द्रित हो गया, मनुष्य के भीतर, अन्तर्चक्षु के विकास पर ।

बुद्ध के जीवन में उल्लेख है, मौलुंकपुत्त नाम के एक युवक ने जाकर, बुद्ध से ग्यारह प्रश्न पूछे । उन ग्यारह प्रश्नों में, जीवन के सारे प्रश्न आ जाते हैं । उन ग्यारह प्रश्नों में, तत्त्व-चिन्तन जिन्हें सोचता है, वे सारी समस्याएँ आ जाती हैं । बहुत मीठा संवाद हुआ । मौलुंकपुत्त ने अपने प्रश्न पूछे । बुद्ध ने कहा, मेरी एक बात सुनोगे ? छह महीने, साल भर रुक सकते हो ? साल भर प्रतीक्षा कर सकते हो ? अच्छा हो कि साल भर मेरे पास रुक जाओ, साल भर बाद पूछ लेना, मैं तुम्हें उत्तर दे दूँगा । मौलुंकपुत्त ने कहा, अगर उत्तर आपको ज्ञात है, तो अभी दे दें, और अगर ज्ञात नहीं है, तो स्पष्ट अपने अज्ञान को स्वीकार कर लें । मैं लौट जाऊँ । साल भर आपको चिंतन करना होगा, तब आप उत्तर देंगे ।

बुद्ध ने कहा, इससे पहले भी यह प्रश्न तुमने किसी से पूछे थे ? मौलुंकपुत्त ने कहा, अनेकों से, लेकिन उन सभी ने तत्काल उत्तर दे

दिये थे। किसी ने यह नहीं कहा, इतने दिन रुक जाओ। बुद्ध ने कहा, अगर वे उत्तर उत्तर थे, तो तुम अब भी उन्हीं प्रश्नों को क्यों पूछते चले जाते हो ? अगर वे उत्तर वस्तुतः उत्तर बन गये होते तो अब तुम्हें दुबारा उन्हीं प्रश्नों को पूछने की जरूरत न रह जाती। इतना तो निश्चित है कि तुम फिर उन्हीं को पूछ रहे हो। जो उत्तर तुम्हें दिये गये, वे उत्तर साबित नहीं हुए। मैं भी तुम्हें तत्काल उत्तर दे सकता हूँ, लेकिन वे उत्तर व्यर्थ हैं। असल में, किसी भी दूसरे से दिये गये उत्तर व्यर्थ होंगे। उत्तर तुममें पैदा होने चाहिए। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि वर्ष भर रुक जाओ।

बुद्ध का एक शिष्य था, आनन्द। वह यह बात सुन कर हँसने लगा। उसने मौलुंकपुत्त से कहा कि तुम इनकी बातों में मत आना। मैं बीस वर्षों से इनके निकट हूँ। अनेक लोग आये और उन अनेक लोगों ने अनेक प्रश्न पूछे। बुद्ध सबसे यही कहते हैं, एक वर्ष रुक जाओ, दो वर्ष रुक जाओ। मैं प्रतीक्षा करता रहा। वर्ष भर बाद, दो वर्ष बाद, वह पूछेंगे और हमें बुद्ध से उत्तर ज्ञात हो सकेंगे। लेकिन न मालूम क्या होता है, वर्ष भर बाद, दो वर्ष बाद, लोग पूछते नहीं और आज तक पता नहीं चल पाया कि बुद्ध के उत्तर क्या हैं। इसलिए अगर पूछना हो, तो अभी पूछ लो, नहीं तो वर्ष भर बाद तुम पूछोगे ही नहीं।

बुद्ध ने कहा, मैं अपने वचन पर दृढ़ रहूँगा। तुम पूछोगे तो उत्तर दूँगा। तुम पूछो ही न, तो बात अलग है। मौलुंकपुत्त वर्ष भर रुका। वर्ष भर बाद बुद्ध ने कहा, पूछते हो ? वह हँसने लगा। वह बोला, अब पूछने की कोई जरूरत नहीं।

भारत की, पूरी की पूरी जो पकड़ है, जो एप्रोच है सत्य के प्रति, वह बाहर से उत्तर उपलब्ध करने की नहीं, भीतरी द्वार खोलने की है। उस द्वार के खुलने पर, प्रश्नों के पर्टीकुलर उत्तर मिलते हैं, ऐसा नहीं; असल में प्रश्न गिर जाते हैं। प्रश्नों का उत्तर मिलना एक

बात है और प्रश्नों का गिर जाना, बिलकुल दूसरी भूमिका की बात है। उत्तर का मिलना महत्त्वपूर्ण नहीं है, प्रश्न का गिर जाना महत्त्वपूर्ण है। हमारे मुल्क के लम्बे यौगिक प्रयोगों ने कुछ निष्कर्ष दिये हैं। उनमें से एक निष्कर्ष यह है कि प्रश्न हमारे अशान्त चित्त की उत्पत्ति हैं। चित्त शान्त हो जाय तो प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। समस्त प्रश्न हमारे अशान्त, उद्विग्न चित्त की उत्पत्ति हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में, जन्म के सम्बन्ध में, मृत्यु के सम्बन्ध में, समस्त प्रश्न, मात्र अशांत चित्त की उत्पत्ति हैं। चित्त शान्त हो जाय, तो प्रश्न विसर्जित हो जाते हैं। निष्प्रश्न हो जाना ज्ञान को उपलब्ध हो जाना है। **प्रश्नों के उत्तर पा लेना पाण्डित्य को उपलब्ध होना है, निष्प्रश्न हो जाना, ज्ञान को उपलब्ध हो जाना है। प्रश्नों के बहुत उत्तर याद कर लेना बौद्धिक है, प्रश्नों का विसर्जन आत्मिक है।**

जिसे मैं ध्यान कह रहा हूँ, उससे प्रश्नों का कोई विशेष उत्तर नहीं मिलेगा, क्रमशः धीरे-धीरे प्रश्न विसर्जित हो जायेंगे। एक निष्प्रश्न चित्त की स्थिति बनेगी, वही समाधान है, वही समाधि है। जहाँ कोई प्रश्न खोजने से न उठे, जहाँ जीवन के प्रति कोई जिज्ञासा जागृत न हो, जहाँ कोई उद्विग्नता, जहाँ कुछ अज्ञात-सा प्रतीत न हो, जहाँ कुछ भी मुझे जानना है, ऐसी उत्तेजना शेष न रह जाय, उसी क्षण, प्रश्नों के गिर जाने की निश्शंक, निस्संदिग्ध हो जाने की इसी स्थिति में सत्य का साक्षात् होता है। प्रश्नों के होने पर सत्य खोजा नहीं जा सकता, प्रश्नों के गिर जाने पर सत्य प्रकट होता है। इसीलिए हम समाधि को समाधान कहते हैं।

समाधि का अर्थ ही समाधान है। यह समाधान कोई दूसरा व्यक्ति किसी को दे सकता है ? अगर कोई ऐसा कहता हो तो वह वंचना कर रहा है। यह समाधान कोई दूसरा आपको दे सकता है, ऐसा कोई दावा करता हो, तो वह आपके अज्ञान का शोषण कर रहा

है। कोई भी दावा करता हो—कोई पैगम्बर, कोई तीर्थंकर, कोई अवतार अगर यह दावा करे—कि यह ज्ञान मैं आपको दे सकता हूँ, तो वह धोखे की बात कर रहा है, वह केवल आपके अज्ञान का शोषण कर रहा है, उसे सत्य का ज्ञान नहीं है। इसलिए **कोई तीर्थंकर, कोई अवतार, कोई पैगम्बर यह दावा नहीं करता है कि मैं आपको ज्ञान दे सकता हूँ। वह केवल इतना कह सकता है कि मुझे ज्ञान कैसे उपलब्ध हुआ, उसकी विधि की मैं चर्चा कर सकता हूँ।** जिनको ठीक प्रतीत हो वे उसका उपयोग कर लें।

ज्ञान नहीं दिया जा सकता। मैं कैसे ज्ञान तक पहुँचा, इसकी विधि की चर्चा की जा सकती है। सत्य नहीं दिया जा सकता, सत्य का अन्तःसाक्षात् कैसे हुआ, उस 'कैसे' का उत्तर दिया जा सकता है। 'सत्य क्या है' इसका उत्तर नहीं, 'सत्य का कैसे साक्षात् हुआ' इसका उत्तर दिया जा सकता है। जो 'क्या' का उत्तर देते हैं उपलब्ध पर, वे चिन्तक हैं; जो 'कैसे' का उत्तर देते हैं, वे योगी हैं। योग 'कैसे' का उत्तर है। अन्तर्चक्षु कैसे खुल सकते हैं और जो भी सत्ता है, उसके हम आमने-सामने कैसे खड़े हो सकते हैं? उस सत्ता से एनकाउण्टर कैसे हो सकता है? उस सत्ता से साक्षात् कैसे हो सकता है? अगर यह बात समझ में आ जाये तो प्रश्न खोजने और उत्तर खोजने की दिशा व्यर्थ हो जायेगी। तब प्रश्न को विसर्जित करने की दिशा सार्थक होगी।

जिसको मैं ध्यान कह रहा हूँ, वह प्रश्नों को विसर्जित करने की दिशा है। प्रश्न हैं, क्योंकि विचार हैं। प्रश्न हैं, क्योंकि चित्त में विचार हैं। अगर विचार न रह जायँ तो प्रश्न भी नहीं रह जायेंगे। निर्विचार चित्त में कौन-सा प्रश्न उठेगा, और कैसे उठेगा? प्रश्न का ढाँचा तो विचार से बँधा है। अगर विचार शून्य हो जायँ चित्त में, तो कोई प्रश्न न उठेगा, कोई जिज्ञासा जागृत न होगी।

उस शान्त क्षण में, जहाँ कोई जिज्ञासा, कोई प्रश्न नहीं उठ रहा, कुछ अनुभव होगा। जहाँ विचार नहीं रह जाते, वहाँ अनुभव का कारण होता है। जहाँ तक विचार हैं, वहाँ तक अनुभव का कारण नहीं होता। जहाँ विचार निःशेष हो जाते हैं, वहाँ भाव का जागरण होता है, वहाँ दर्शन का प्रारम्भ होता है। विचार पर्दे की तरह हमारे चित्त को घेरे हुए हैं। विचार में हम इतने तल्लीन हैं, इतने आकुपाइड हैं, इतने व्यस्त हैं कि विचार के अतिरिक्त जो पीछे खड़ा है, उसे देखने का अन्तराल, उसे देखने का रिक्त स्थान नहीं मिलता। विचार में अत्यन्त आकुपाइड होने, अत्यन्त व्यस्त होने, अत्यन्त संलग्न होने के कारण पूरा जीवन उन्हीं में चिन्तित रहते हुए बीत जाता है। उनके पार कौन खड़ा है, इसकी झलक भी नहीं मिलती। इसलिए ध्यान का अर्थ है, पूरी तरह अनआकुपाइड हो जाना, व्यस्तता से रहित हो जाना।

तो, अगर हम अरिहंत-अरिहंत का स्मरण करें, राम-राम का स्मरण करें, तो वह तो आकुपेशन ही होगा। वह तो फिर एक व्यस्तता हो जायगी। वह तो एक काम हो गया। अगर हम कृष्ण की मूर्ति या महावीर की मूर्ति का स्मरण करें, उनके रूप का स्मरण करें, तो वह भी व्यस्तता है। वह ध्यान नहीं होगा। कोई नाम, कोई रूप, कोई प्रतिमा, अगर हम चित में स्थापित करें, तो वह भी विचार हो गया, क्योंकि विचार के सिवाय, चित्त में कुछ और स्थिर नहीं होता। चाहे वह विचार भगवान का हो, चाहे सामान्य काम का हो, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। चित्त विचार से भरता है। **चित्त को निर्विचार, चित्त को अनआकुपाइड छोड़ देना ही ध्यान है।**

पिछली बार जब मैं आया था, तब मैंने जापानी साधु के बाबत आपसे कहा था संभवतः। रिंझाई नाम का वहाँ एक साधु हुआ। बड़ा उसके आश्रम को देखने, जापान का बादशाह एक दफा गया। बड़ा

आश्रम था, उसमें कोई पाँच सौ भिक्षु थे। वह साधु एक-एक स्थान को दिखाता हुआ घूमा कि यहाँ साधु भोजन करते हैं, यहाँ निवास करते हैं, यहाँ अध्ययन करते हैं। सारे आश्रम के बीच में एक बहुत बड़ा भवन था। सबसे सुन्दर, सबसे शान्त, सबसे विशाल। वह राजा बार-बार पूछने लगा—और साधु यहाँ क्या करते हैं? वह कहने लगा, वहाँ के विषय में बाद में बात करेंगे। बगीचा, लाइब्रेरी, अध्ययनकक्ष, सब बताता है। राजा बार-बार पूछने लगा, और साधु यहाँ क्या करते हैं, यह जो बीच में भवन है? साधु बोला, थोड़ा ठहर जायँ। उसके सम्बन्ध में बाद में बात कर लेंगे। जब पूरा आश्रम घूम कर, राजा वापस होने लगा, तब उसने दुबारा पूछा, यह बीच का भवन तो छूट ही गया, यहाँ साधु क्या करते हैं? आश्रम के प्रधान ने कहा, उसको बताने को, इसलिए मैं रुका कि वहाँ साधु कुछ करते नहीं, वहाँ साधु अपने को 'न' करने की स्थिति में छोड़ते हैं। वह ध्यान-कक्ष है। वहाँ कुछ करते नहीं हैं। बाकी पूरे आश्रम में काम होता है, केवल वहाँ काम छोड़ा जाता है। बाकी पूरे आश्रम में क्रियाएँ होती हैं, वहाँ क्रियाएँ नहीं की जातीं। जब किसी को क्रिया छोड़नी होती है, तो वहाँ चला जाता है, सारी क्रियाएँ छोड़ कर चुप हो जाता है।

ध्यान अक्रिया है, कोई क्रिया नहीं है कि हम सोचें कि वहाँ कोई काम है, कि हम बैठे हैं और काम कर रहे हैं। अगर काम कर रहे हैं, तो वह ध्यान नहीं है। ध्यान का अर्थ है जो निरन्तर काम चल रहा है चित्त में, उसको विराम दे देना। कोई काम नहीं करना है। चित्त को बिलकुल क्रियाशून्य छोड़ देना है। चित्त की क्रियाशून्य स्थिति में क्या होगा? क्रिया-शून्य स्थिति में भीतर कुछ होगा, केवल दर्शन रह जायेगा, केवल देखना रह जायेगा। इस स्थिति में जो हमारा स्वभाव है, वही केवल रह जायेगा। दर्शन-ज्ञान हमारा स्वभाव

है। हम सब छोड़ सकते हैं, ध्यान और दर्शन नहीं छोड़ सकते। सतत चौबीस घण्टे, ज्ञान हमारे साथ मौजूद है। जब गहरी नींद में सोते हैं, तब भी स्वप्न का हमें पता होता है। जब स्वप्न भी विलीन हो जाते हैं और सुषुप्ति होती है, तब भी हमें इस बात का पता होता है कि बहुत आनन्दपूर्ण निद्रा है। सुबह उठ कर हम कहते हैं, रात्रि बहुत आनन्द से बीती। कोई हमारे भीतर उस समय भी जाग रहा है, जान रहा है। कोई हमारे भीतर उस समय भी चैतन्य है। उठते-बैठते, सोते-जागते काम करते, न काम करते हमारे भीतर एक सतत, अविच्छिन्न ज्ञान का प्रवाह बना हुआ है। समस्त क्रियाएँ छोड़ देने पर केवल ज्ञान का अविच्छिन्न प्रवाह मात्र शेष रह जायेगा। सिर्फ जान रहा हूँ, सिर्फ हूँ, बोध मात्र होने का, सत्ता का बोध मात्र शेष रह जायेगा। उसी बोध में, उसी सत्ता मात्र में छलाँग लगाना धर्म है। उसी में कूद जाना—उसी अस्तित्व में धर्म है और वहाँ जो अनुभूति होती है वह जीवन के बन्धन से, जीवन की आसक्ति से, जीवन के दुःख से मुक्ति दे देती है, क्योंकि वहाँ जाकर ज्ञात होता है कि वह जो अन्तर्सत्ता भीतर बैठी हुई है, वह निरन्तर पाप से, दुःख से पीड़ा से मुक्त है। एक क्षण को भी उस पर कभी कोई पाप का, पीड़ा का, दुःख का कोई दाग नहीं लगता। वह चैतन्य नित्य-शांत, नित्य-मुक्त है। वह चैतन्य नित्य ब्रह्मस्थिति में है। उस चैतन्य में कभी कोई विकार नहीं हुआ, न होने की सम्भावना है। जैसे ही यह दर्शन होता है, जीवन एक अलौकिक धरातल पर आनन्द की अनुभूति के प्रति उन्मुख हो जाता है। इस उन्मुखता को मैं ध्यान और समाधि कहता हूँ।

मैंने दो बातें कहीं—अव्यस्त, (अनआकुपाइड) और अक्रिया। असल में दोनों का एक ही अर्थ है। दोनों को एक शब्द में कहें—परिपूर्ण शून्यता ध्यान है। यह परिपूर्ण शून्यता, व्यक्ति अगर लाना चाहे, तो मेरी समझ में उसे तीन अंगों पर अपने प्रयोग करना होता

है। प्राथमिक रूप से उसका शरीर है। अगर उसे अक्रिया में जाना है, निष्क्रियता में जाना है, तो शरीर को अक्रिय छोड़ना होगा। शरीर को बिलकुल निष्क्रिय छोड़ना होगा, जैसे कि मृत्यु में शरीर छूट जाता है। उतना ही निष्क्रिय छोड़ देना होता है, ताकि शरीर पर जितने भी तनाव, जितने भी टेन्शंस हैं, वे सब शांत हो जायँ।

यह तो आपने अनुभव किया होगा, शरीर पर अगर कहीं भी तनाव हो, पैर में अगर दर्द हो, तो चित्त बार-बार उसी दर्द की तरफ जाता है। चित्त में कहीं कोई तनाव न हो, तो वह शरीर की तरफ जाता ही नहीं, आपको शरीर में केवल उन्हीं अंगों का पता चलता है, जो बीमार होते हैं। जो अंग स्वस्थ होते हैं, उनका पता नहीं चलता। अगर आपके सिर में दर्द है, तो आपको पता चलेगा कि सिर है। अगर दर्द नहीं है, तो सिर का पता नहीं चलेगा। शरीर जहाँ-जहाँ तनावग्रस्त होता है, वहीं-वहीं उसका बोध होता है। शरीर अगर बिलकुल तनावशून्य हो, तो उसका पता नहीं चलता।

तो, शरीर को इतना शिथिल छोड़ देना है कि उसके सारे तनाव विलीन हो जायँ, तो थोड़ी देर में देह-बोध विलीन हो जाता है। थोड़ी देर में देह है या नहीं है, यह बात विलीन हो जाती है। थोड़े ही दिनों के प्रयोग से देह-बोध विर्सजित हो जाता है। शरीर का परिपूर्ण तनावशून्य होना, शरीर से मुक्त हो जाने का उपाय है। इसलिए ध्यान के पहले चरण में हम शरीर को ढीला छोड़ देते हैं। अभी आज प्रयोग के लिए बैठेंगे। शरीर को उस समय बिलकुल ढीला छोड़ देना है, जैसे मुर्दा हो गया, जैसे उसमें कोई प्राण नहीं है। उसमें कोई कड़ापन, कोई तनाव, कोई अकड़, कायम नहीं रखनी है, सब छोड़ देना है। इतना ढीला छोड़ देना है, जैसे मिट्टी का लौंदा है, हमारी कोई पकड़ ही नहीं है, इसमें कोई जान ही नहीं है। अपने ही शरीर को बिलकुल मुर्दे की भाँति छोड़ देना है। जब शरीर को

बिलकुल शिथिल छोड़ देंगे, उसके बाद मैं दो मिनट तक आपके सहयोग के लिए सुझाव दूँगा, सजेशन्स दूँगा कि आपका शरीर शिथिल होता जा रहा है। मेरे दो मिनट निरंतर कहने पर कि शरीर शिथिल हो रहा है, आपको भाव करना है कि शरीर शिथिल हो रहा है। सिर्फ यह भाव मात्र करना है कि शरीर शिथिल होता जा रहा है। आप हैरान होंगे, भाव की इतनी शक्ति है कि अगर आप संकल्पपूर्वक भाव करें तो प्राण तक छूट सकते हैं। जिसको भारत में, इच्छा-मरण कहते हैं, वह भाव मात्र है। अगर आप ठीक से भाव करें, तो शरीर वैसा ही हो जायेगा।

रामकृष्ण के विषय में एक उल्लेख है। रामकृष्ण ने सारे धर्मों की साधना की। इस तरह की साधना करने वाले जगत में वह पहले साधु थे। दूसरे साधु जगत में ढेरों हुए हैं, वह अपने धर्म की साधना करके सत्य को पा लेते हैं। रामकृष्ण को लगा कि और धर्मों की साधनायँ सत्य तक ले जाती हैं या नहीं, अतः उन्होंने सारे धर्मो की साधनाएँ कीं और उन्होंने कहा कि हर धर्म की साधना सत्य तक ले जाती है।

बंगाल में एक सम्प्रदाय प्रचलित है—राधा-सम्प्रदाय। उसकी भी साधना उन्होंने की। राधा-सम्प्रदाय की मान्यता है कि केवल परम ब्रह्म ही पुरुष है, शेष सारे लोग नारियाँ हैं, राधाएँ हैं। पुरुष भी उस सम्प्रदाय का, अपने को परम चैतन्य ब्रह्म की पत्नी के ही रूप में स्वीकार करता है। वह यही भाव करता है कि वह परम चैतन्य की नारी है। रामकृष्ण ने उसकी भी साधना की।

आप हैरान होंगे, रामकृष्ण ने तीन दिन यह भाव किया कि वह राधा हैं और उन पर स्त्री के सारे लक्षण प्रकट हो गये। उनकी वाणी बदल गयी, उनके बोलने का ढँग बदल गया, उनके अन्दर में भी परिवर्तन आया। इसे लाखों लोगों ने आँखों से देखा। लोग हैरान हो गये कि यह क्या हुआ। राधा-सम्प्रदाय के तो ढेर सारे लोग हैं, उन्हें दोह-

राते भी हैं। लेकिन, रामकृष्ण में पहली दफा, इन लोगों ने साक्षात् किया कि उनमें स्त्री के सारे लक्षण प्रकट हो गये हैं। तीन दिन की निरन्तर इस भावस्थिति ने कि वह राधा हैं, उन्हें राधा की परिणति दे दी। उन लक्षणों के जाने में छः महीने लगे।

अभी पश्चिम में, पूरब के और बहुत से मुल्कों में ढेर सारा काम हो रहा है। हम जैसा भाव करें, शरीर में वैसी परिणतियाँ हो जाती हैं। अगर हम ठीक से भाव करें कि शरीर शिथिल हो रहा है, परिपूर्ण चित्त से भाव करें, पूर्ण, समग्र चित से भाव करें कि शरीर शिथिल हो रहा है, तो दो मिनट में आप पायेंगे कि शरीर मृत हो गया। इसमें कोई प्राण नहीं है। ऐसी स्थिति में अगर शरीर गिरने लगे, तो उसे रोकना नहीं। और अच्छा हो कि जरा भी उसे न रोकें, उसे बिलकुल गिर जाने दें। उसके बाद, दो मिनट तक भाव करना है कि श्वास शान्त हो रही है। मैं दोहराऊँगा कि श्वास शान्त हो रही है। दो मिनट तक आपको भाव करना है कि श्वास शान्त हो रही है।

अगर हमें परिपूर्ण शून्यता में जाना है, तो शरीर का शिथिल होना अनिवार्य है, श्वास का शान्त होना अनिवार्य है। दो मिनट भाव करने में श्वास शान्त हो जाती है। उसके बाद मैं दो मिनट कहूँगा कि चित्त, मन मौन हो रहा है, विचार शून्य हो रहे हैं। दो मिनट तक भाव करने पर विचार शून्य हो जाते हैं। और छः मिनट की इस छोटी-सी प्रक्रिया में अचानक आप पायेंगे कि एक रिक्त स्थान में, एक अवकाश में, एक शून्य में प्रवेश हो गया। चित्त मौन हो जायेगा। भीतर वाणी और शब्दों का उठना विलीन हो जायेगा। भीतर एक रिक्त स्थान, खाली जगह रह जायेगी, जहाँ कुछ भी नहीं है। और न कोई विचार है, न कोई रूप है, न कोई आकृति है, न कोई ग्रन्थ है, न कोई ध्वनि है। जहाँ कुछ भी नहीं है, केवल अकेले आप रह गये। उस अकेलेपन को उस लोनलीनेस को जहाँ अकेला मैं रह गया, चारों तरफ

रिक्त आकाश से घिरा हुआ, उस अकेलेपन में ही उस 'स्व' का अनुभव उद्भूत होता है जिसको महावीर ने आत्मा कहा है, जिसको शंकर ने ब्रह्म कहा है या जिसको और लोगों ने और नाम दिये हैं।

उस सत्य का अनुभव, अत्यन्त एकाकीपन में होता है। एकाकीपन की हम तलाश करते हैं, जंगल में भाग कर, पहाड़ों पर भाग कर। लेकिन एकाकीपन का सम्बन्ध स्थान से नहीं है, स्थिति से है। अकेलापन जंगल में जाकर नहीं खोजा जा सकता। वहाँ जो पशु-पक्षी होंगे, उनसे ही मेल-जोल हो जायेगा, उनसे ही संगी-साथीपन बन जायेगा।

अकेलापन अपने में जाकर पाया जाता है, जहाँ जाकर सब रिक्त हो जाय और मैं बिलकुल अकेला रह जाऊँ। उस अकेली स्थिति में, उस नितांत एकाकी स्थिति में, जहाँ केवल होने मात्र की स्पन्दना रह गयी, वहाँ कुछ अनुभव होता है, जो जीवन में क्रान्ति ला देता है। उसके लिए यह अत्यन्त छोटा-सा सरल प्रयोग है। यह प्रयोग इतना छोटा-सा है कि कई दफा लग सकता है कि इतने से प्रयोग से कैसे आनन्द से साक्षात्कार हो सकता है। लेकिन बीज हमेशा छोटे होते हैं। परिणाम में वृक्ष विराट् हो जाते हैं। जो बीज को छोटा समझ कर, यह भाव कर ले कि इससे क्या वृक्ष होगा, वह वृक्ष से वंचित हो जायेगा। बीज हमेशा छोटे होते हैं, परिणाम में विराट् उपलब्ध हो जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म-सा बीज, ध्यान का होने पर विराट् अनुभूति की फसल को काटा जा सकता है।

मेरी बात आप समझ गये होंगे। अभी तीन चरण में हम ध्यान के लिए जाते हैं। सब लोग इस समय दूर बैठेंगे ताकि गिरने की सुविधा हो। सारे लोग थोड़े फासले पर बैठ जायँ और काफी गौर से देख लें कि गिरने की सुविधा हो। कल कुछ असुविधा हुई थी। आँख बन्द कर लें। दोनों हाथ जोड़ कर संकल्प कर लें। अब हाथ छोड़ दें

और जैसा मैं सुझाव देता हूँ, वैसा भाव करें। पहले हम शरीर के शिथिल होने का भाव करेंगे, फिर श्वास शान्त होने का भाव करेंगे और इसके बाद मन के मौन होने का भाव करेंगे। अन्त में दस मिनट के लिए परिपूर्ण विश्राम में चले जायेंगे।

●

५ : एक सीधा सत्य

एक धर्मगुरु ने, एक रात एक सपना देखा। सपने में उसने देखा कि वह स्वर्ग के द्वार पर पहुँच गया है। जीवन भर उसने स्वर्ग की ही बातें की थीं और जीवन भर, स्वर्ग का रास्ता क्या है, यह लोगों को बताया था। वह निश्चिन्त था कि जब मैं स्वर्ग के द्वार पर पहुँचूँगा, तो स्वयं परमात्मा मेरे स्वागत को तैयार रहेंगे। लेकिन वहाँ द्वार पर तो कोई भी नहीं था। द्वार खुला भी नहीं था, बन्द था। द्वार इतना बड़ा था कि उसके ओर-छोर को देख पाना सम्भव नहीं था। उस विशाल द्वार के समक्ष खड़े होकर, वह एक छोटी चींटी जैसा मालूम होने लगा। उसने द्वार को बहुत खटखटाया, लेकिन उस विशाल द्वार पर, उस छोटे-से आदमी की आवाजें भी पैदा हुई या नहीं, इसका पता चलना तक कठिन था। वह बहुत डर गया।

निरन्तर उसने यही कहा था कि परमात्मा ने, अपनी ही शकल में, आदमी को बनाया और आज इस विराट् द्वार के समक्ष, खड़े होकर वह इतना छोटा मालूम होने लगा। बहुत चिल्लाने, बहुत द्वार पीटने पर, द्वार से कोई एक छोटी खिड़की खुली और किसी ने झाँका। जिसने झाँका था, उसकी हजार आँखें होंगी और इतनी तेज रोशनी थी उन आँखों की कि वह धर्मगुरु दीवाल के एक छोटे-से कोने में सरक गया। इतना डर गया और चिल्लाया कि आप कृपा कर चेहरा भीतर रखें। हे परमात्मा, आप चेहरा भीतर रखें, मैं बहुत डर गया हूँ। उस हजार आँखों वाले व्यक्ति ने कहा, मैं परमात्मा नहीं हूँ,

मैं तो यहाँ का पहरेदार हूँ, द्वारपाल हूँ। तुम कहाँ हो ? मुझे दिखाई नहीं पड़ते, तुम कितने छोटे हो और कहाँ छिप गये हो। उस धर्मगुरु ने चिल्ला कर कहा कि मैं तो परमात्मा के दर्शन करना चाहता हूँ और स्वर्ग में प्रवेश पाना चाहता हूँ। उस द्वारपाल ने पूछा, तुम हो कौन और कहाँ से आये हो ? उसने कहा, क्या आपको पता नहीं ? मैं एक धर्मगुरु हूँ और पृथ्वी से आ रहा हूँ। उस हजार आँखों वाले आदमी ने कहा, पृथ्वी ? यह कहाँ है ? वह धर्मगुरु हैरान हुआ, कहा तुम्हें पृथ्वी का भी पता नहीं ? उस हजार आँखों वाले ने कहा कि किस युनिवर्स में ? तुम किस विश्व की पृथ्वी की बात कर रहे हो ? करोड़ों युनिवर्स हैं, करोड़ों विश्व हैं। प्रत्येक विश्व के करोड़ों सूरज हैं, प्रत्येक सूरज की अपनी पृथ्वियाँ हैं। तुम किस पृथ्वी की बात करते हो ? क्या नम्बर है तुम्हारी पृथ्वी का, क्या इण्डेक्स नम्बर है ? उसे तो कुछ पता नहीं था। उसने कहा कि हम तो एक ही विश्व को जानते हैं और एक ही सूरज को। और हमने इसलिए उनका कोई नाम नहीं रखा, कोई नम्बर नहीं रखा। उस पहरेदार ने कहा, तब बहुत मुश्किल है पता लगाना कि तुम कहाँ से आ रहे हो। पहली बार ही इस द्वार पर पृथ्वी का नाम सुना गया है। और 'मनुष्य' शब्द भी पहली बार ही मेरे कानों में पड़ा है। उस धर्मगुरु के तो प्राण बैठ गये—सोचा था, परमात्मा द्वार पर, स्वागत को मिलेंगे। यहाँ तो इसका भी कोई पता नहीं है कि जिस पृथ्वी से वह आ रहा है वह कहाँ है। फिर भी उस पहरेदार ने कहा, तुम निश्चिन्त रहो, मैं अभी पूछताछ करवाता हूँ। थोड़ा समय तो लग जायेगा। उस भवन में खोज करवाता हूँ कि तुम किस पृथ्वी की बातें करते हो, जहाँ सारी पृथ्वियों के सम्बन्ध में, हमारे पास आँकड़े इकट्ठे हैं, नक्शे हैं, लेकिन कुछ महीने लग जायेंगे। इसके पहले तो पता लगना कठिन है कि तुम कहाँ से आते हो, किस जाति के हो और तुम्हारा यहाँ

आने का क्या प्रयोजन है। उसने कहा कि मैं परमात्मा के दर्शन करना चाहता हूँ। उस पहरेदार ने कहा, अनन्त वर्ष हो गये, मुझे इस द्वार पर। अभी तो मैं भी परमात्मा के दर्शन नहीं कर पाया। और अब तक मैं ऐसे व्यक्ति से भी नहीं मिला हूँ, इस स्वर्ग के द्वार पर, जिसने परमात्मा के दर्शन किये हों। परमात्मा की पूरी सृष्टि को ही जान लेना कठिन है। परमात्मा का जानना तो और भी कठिन है। वह तो समग्रता का ही नाम है।

घबराहट में उस धर्मगुरु की नींद टूट गयी। वह पसीने से लथ-पथ था। घबरा गया था। फिर रात भर उसे नींद नहीं आ सकी। वह बार-बार यही सोचता रहा कि कहीं मनुष्य ने, अपने अहंकार के ही प्रभाव में तो, यह सारी बातें तो नहीं सोच ली हैं कि परमात्मा ने आदमी को अपनी ही शकल में बनाया और परमात्मा आदमी से मिलने को उत्सुक है, पुकार रहा है और स्वर्ग के द्वार और मोक्ष यह कहीं मनुष्य ने अपने ही मन की कल्पनाएँ तो नहीं खड़ी कर ली हैं ?

इस कहानी से, इसलिए मैं शुरू करना चाहता हूँ धर्मगुरु के इस सपने से, कि आदमी एक बहुत बड़े भ्रमलोक में जीता है। वह स्वयं को न जाने क्या-क्या समझ लेता है, जब कि इस विराट् विश्व के किसी कोने में, उसका कोई अस्तित्व नहीं है। इस विश्व की विराटता को हम अनुभव करें और फिर उसके सामने अपने को खड़ा करें, तो हम कहाँ रह जाते हैं, हम कहाँ हैं ? यह पृथ्वी बहुत छोटी है। हमारा सूरज इस पृथ्वी से साठ हजार गुना बड़ा है। और यह सूरज, जितने सूरज हम जानते हैं, उनमें सबसे छोटा है। और कोई दो अरब सूरज जान लिये गये हैं और प्रत्येक सूरज का अपना विस्तार है। ये दो अरब सूरज ही समाप्ति नहीं हैं, उनके आगे भी विश्व होगा, उसके आगे भी विस्तार होगा, उसके आगे भी फैलाव होगा। इतने अनन्त विश्व के, एक छोटी-सी पृथ्वी के कोने पर, छोटा-सा

प्राणी है मनुष्य। उसकी भी कोई बहुत बड़ी संख्या नहीं है। कोई साढ़े तीन अरब उसकी संख्या है। अगर हम और प्राणियों की संख्या के हिसाब से विचार करेंगे, तो पायेंगे, वह कहीं भी नहीं है। और छोटे-छोटे प्राणी हैं, उनकी संख्या अनन्त है। उसमें छोटी-सी संख्या का यह मनुष्य है।

मनुष्य का यह जो ह्यूमन कार्नर है, यह तो छोटा-सा कोना है। इस जगत में, हम अपने को न मालूम क्या समझ बैठे हैं। अपने को न मालूम क्या सोच बैठे हैं। यह मनुष्य भी बहुत थोड़े-से दिन जीता है—कोई सत्तर अस्सी वर्ष ज्यादा-से-ज्यादा सौ वर्ष। इस अनन्त विश्व के विस्तार में सौ वर्षों की कोई गणना नहीं, कोई कीमत नहीं, कोई जगह नहीं। पृथ्वी को बने ही कोई दो अरब वर्ष हो गये, और पृथ्वी बहुत नया आगमन है जगत में। अरबों खरबों वर्ष पीछे है। उनकी श्रृंखला का कोई अन्त नहीं। उतना ही समय आगे—अनन्त, इटर्नल, कोई अन्त नहीं। उसमें एक छोटे-से क्षण में, एक आदमी जी लेता है और न मालूम क्या सोच लेता है। स्पेस के ख्याल से भी आदमी ना-कुछ है, टाइम के ख्याल से भी आदमी ना-कुछ है।

धार्मिक व्यक्ति मैं उसे कहता हूँ, जो अपने इस ना-कुछ होने के अनुभव को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन धार्मिक व्यक्ति की कथा उल्टी रही है। धार्मिक व्यक्ति घोषणा करता है, अहं ब्रह्मास्मि, मैं हूँ ब्रह्म, मैं हूँ ईश्वर, मैं हूँ आत्मा, मैं हूँ अनन्त आत्मा, मैं हूँ मोक्ष का अधिकारी, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ! धार्मिक व्यक्ति इन बातों की घोषणा करता है! ऐसे व्यक्ति को मैं धार्मिक नहीं कहता। **धार्मिक व्यक्ति वह है जो अपनी इस नथिंगनेस को, ना-कुछ होने को अनुभव कर ले।** जिस दिन यह ना-कुछ होना अनुभव हो जाता है, उसी दिन जीवन के बन्द द्वार खुल जाते हैं और सब-कुछ होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। लेकिन ना-कुछ होने का अनुभव अत्यन्त प्राथमिक है।

बिलकुल पहली सीढ़ी है कि हम जानें कि हम कुछ भी नहीं हैं। लेकिन, यह हमें पता लगना कठिन हो जाता है, क्योंकि हम मनुष्यों के बीच में जीते हैं। हम सबका भ्रम चूँकि समान है, इसलिए उस भ्रम का कभी खण्डन नहीं होता। हम सब एक-दूसरे के भ्रम के पोषक बनते चले जाते हैं।

जब पहली बार गेलेलियो और उसके साथियों ने कहा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता है, पृथ्वी ही चक्कर लगाती है सूरज के, तो मनुष्य के अहंकार को बड़ा धक्का पहुँचा। धर्मगुरुओं ने कहा, यह कैसे हो सकता है? परमात्मा ने विशेष रूप से मनुष्य को बनाया है और सारा जगत मनुष्य के उपभोग के लिए बनाया है। तो जिस पृथ्वी पर मनुष्य रहता है, वह पृथ्वी सूरज के चक्कर कैसे लगा सकती है, सूरज ही चक्कर लगाता है, पृथ्वी के। गेलेलियो को बुला कर अदालत में कहा गया कि माफी माँग लो, ऐसी भूल की बातें मत करो। आदमी जिस पृथ्वी पर रहता है, वह कैसे सूरज का चक्कर लगा सकती है, सूरज ही चक्कर लगाता है।

लेकिन, धीरे-धीरे जितनी हमारी समझ बढ़ी, पता चला कि पृथ्वी सेंटर नहीं है विश्व का, कि सारा विश्व उसका चक्कर लगाए। पृथ्वी को सेंटर मानने का ख्याल हमें क्यों पैदा हुआ था? क्योंकि हम अपने को सेण्टर मानने के ख्याल में हैं। हम सारे जगत के केन्द्र हैं, सारा जगत हमारे इर्द-गिर्द चक्कर लगाता है। हम सब-कुछ हैं, बीच में यह जो मनुष्य है, मनुष्यता है, यह केन्द्र है और बाकी सारा जगत चक्कर लगाता है। हजारों वर्षों से, धार्मिक व्यक्ति यह कहते रहे हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि किन्हीं और प्राणियों के बिना पूछे ही हम यह घोषणा करते रहे हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। न तो हमने चीटियों से पूछा है, न हमने पक्षियों से पूछा है। यह एक तरफा गवाही हमने स्वीकार कर ली है। अपने

ही मुँह से कहते रहे हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। वह सरताज है सृष्टि का। यह बिना किसी प्राणी से पूछे हमने घोषणा कर दी है और चूँकि किसी प्राणी को इस घोषणा का पता भी नहीं है, इसलिए कोई प्रतिवाद भी नहीं आता है, कोई इनकार भी नहीं करता है।

हम अपने कोने में बैठे हुए घोषणाएँ करते रहते हैं कि हम यह हैं, हम वह हैं। अगर पशु-पक्षियों से पूछा जाय और किसी दिन हम जान सकें कि वह क्या सोचते हैं, तो शायद ही कोई ऐसे प्राणी की जाति मिले, जो अपने मन में यह न सोचती हो कि हम सर्वश्रेष्ठ हैं। चीटियाँ सोचती होंगी हम, बन्दर सोचते होंगे हम। डार्विन ने कह दिया है कि मनुष्य विकसित हुआ है बन्दरों से। अगर बन्दरों से पूछा जाय तो बन्दर यह कभी मानने को राजी न होंगे कि आदमी उनके ऊपर एक विकास है। वह तो यही मानेंगे कि आदमी जो है, वह हमारा एक पतन है। हम दरख्तों पर कूदते, छलाँगते हैं, आदमी जमीन पर सरकता है, यह हमारा पतन है, हमारी जाति से कुछ लोग पतित हो गये हैं नीचे, और वे आदमी हो गये हैं। यह एवोलूशन नहीं है। अगर बन्दरों का कोई डार्विन होगा, तो इसको एवोलूशन या विकास मानने को तैयार नहीं होगा कि आदमी विकसित हो गया है। लेकिन आदमी मानने को राजी हो गये।

आदमी के अहँकार को जो भी चीज पुष्ट करती है, वह मानने को एकदम राजी हो जाता है। पृथ्वी केन्द्र थी, मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। लेकिन धीरे-धीरे, रोज-रोज ये बातें छिनती चली गयीं। विज्ञान ने रोज-रोज चोट की। पहली चोट यह हुई कि पृथ्वी केन्द्र न रही। जिस दिन पृथ्वी केन्द्र न रही, उसी दिन बहुत बड़ा धक्का मनुष्य के अहंकार को पहुँचा।

हम सोचते थे कि मनुष्य के भीतर जितना घुसेंगे, उतना ही परमात्मा उपलब्ध होगा, उतना ही आत्मा का दर्शन होगा। इधर आया फ्रायड, उसने कहा कि मनुष्य के भीतर जितना घुसो, सिवाय सेक्स के कुछ उपलब्ध होता है? बहुत घबराहट, सारी दुनिया में फैली। आदमी ने फिर इनकार किया कि कैसी फिजूल की बातें हैं। भीतर तो है परमात्मा और यह फ्रायड कहता है कि भीतर है सेक्स। यह सब बड़ी गलत बातें हैं। लेकिन जितनी हमारी समझ बढ़ी, पता चला कि आदमी के सामान्य केन्द्र पर सेक्स ही है। वह उसी से जन्मता है, उसी में जीता है, उसी के लिए जीता है और उसी में समाप्त हो जाता है। और एक बड़ा धक्का लगा, और एक केन्द्र अहंकार का टूट गया।

और तीसरा बड़ा धक्का लगा जो विराट् विश्व की खोज-बीन शुरू हुई और पाया कि अन्तहीन सीमाएँ हैं, जगत की। कहीं कोई अन्त होता नहीं, फैलता जाता है, फैलता जाता है जगत, कहीं कोई जगह नहीं आती, जहाँ हम कहें कि यहाँ समाप्त हो गया। सोचते थे हम, तारे हमारे बहुत निकट हैं, रात को दिखाई पड़ते हैं, लेकिन जैसे-जैसे समझ बढ़ी, पता चला, तारे हमसे बहुत दूर हैं। इतने दूर हैं कि उनकी गणना भी करना बहुत कठिन है।

सबसे करीब का जो तारा है हमसे, उसकी रोशनी भी आने में हम तक चार वर्ष लग जाते हैं। और रोशनी की गति साधारण नहीं होती, एक सेकेण्ड में एक लाख छियासी हजार मील होती है। एक सेकेण्ड में प्रकाश की किरण एक लाख छियासी हजार मील चलती है। जो सबसे करीब का तारा है, उसकी किरण चले आज, तो चार वर्ष बाद यहाँ पहुँचेगी। दूर से दूर के जो तारे हैं उनकी रोशनी उस दिन चली थी जिस दिन पृथ्वी बनी, दो अरब वर्ष पहले, अभी तक पहुँची नहीं। उनके आगे भी तारे हैं, वह हमें दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि उनकी रोशनी हम तक अभी पहुँची ही नहीं है।

रात को जो तारे हम देखते हैं, वह जहाँ हमें दिखाई पड़ते हैं, वहाँ नहीं होते। कोई तारा वहाँ नहीं होता। रात बिलकुल झूठी है। कोई तारा वहाँ नहीं है, जहाँ हमें दिखाई पड़ रहा है। वहाँ कभी था, उसकी रोशनी इतनी देर में आयी कि इतनी देर में तो वह न मालूम कहाँ चला गया, कितनी यात्रा कर गया, अब वहाँ नहीं है। जो तारा सबसे करीब है, वह चार वर्ष पहले वहाँ था। अब वहाँ नहीं है। चार वर्ष में तो वह अरबों मील चल चुका। और हो सकता है, चार वर्ष में टूट कर नष्ट भी हो गया हो, तो भी हमें दिखाई पड़ता है क्योंकि चार वर्ष पहले वह वहाँ था। उसकी रोशनी वहाँ से चली थी वह अब हमारी आँख पर आयी है, तो हमें दिखाई पड़ रहा है वहाँ।

पूरी रात झूठी है, कोई तारा वहाँ नहीं है जहाँ हमें दिखाई पड़ रहा है। कोई तारा साठ वर्ष पहले वहाँ था, कोई हजार वर्ष, कोई लाख वर्ष, कोई करोड़ वर्ष, कोई अरब वर्ष। दो अरब वर्ष पहले जो तारे थे, उनकी रोशनी तो धीरे-धीरे हम तक पहुँचेगी। यह सारी रात झूठी है। ये तारे इतने दूर हैं, इनकी दूरी ने घबराहट पैदा कर दी है, इनके विस्तार ने, यह जो इतना एक्सपांडिंग जगत है इसने, आदमी को एकदम छोटे से छोटा कर दिया। वह कहीं भी नहीं रह गया, उसकी कोई गणना नहीं रह गयी, उसका कोई हिसाब नहीं रह गया। धार्मिक आदमी को बड़ी चोटें पहुँची हैं।

मेरी दृष्टि से तो धार्मिक आदमी को चोट पहुँचनी नहीं थी, बल्कि धार्मिक आदमी की गहराई बढ़नी थी, इन बातों से। क्योंकि इन बातों से, यह पता चलना शुरू हुआ कि हम कुछ भी नहीं हैं। और हमारा वह पुराना भ्रम टूटा कि हम सब कुछ अपने को मान कर बैठे थे। उस भ्रम को धक्के लगे, उससे सारी दुनिया का धार्मिक जगत एकदम हिल गया, काँप गया। उसे लगा कि यह तो आदमी कुछ भी नहीं है। तो फिर हमारी घोषणाएँ, हमारी अमरता की घोषणाएँ, हमारी आत्मा की, ब्रह्म की, ईश्वर की, मोक्ष को पाने की घोषणाएँ, इनका क्या होगा? लेकिन मेरी दृष्टि से, विज्ञान की इन तीन सौ वर्षों की खोजों ने, असली धार्मिक आदमी को पैदा करने की भूमिका उपस्थित कर दी।

असली धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है अपने ना-कुछ होने को जान लेना। और जिस दिन, कोई अपनी पूरी नथिंगनेस परिपूर्णता में जान लेता है, उसी दिन शून्य को उपलब्ध हो जाता है।

आज की सुबह, इस संबंध में मैं थोड़ी-सी बात आपसे कहना चाहता हूँ। हम कुछ भी नहीं हैं, यह बोध हमारा गहरे से गहरा हो जाना चाहिए। यह बोध हमारा निरन्तर तीव्र से तीव्र होते जाना चाहिए कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। और ऐसा सोचने की जरूरत नहीं है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। जिन्दगी को हम ऐसे देखेंगे तो हमको दिखाई पड़ जायेगा कि मैं कुछ भी नहीं हूँ।

यह दिखाई पड़ने में कौन-सी कठिनाई है? मृत्यु रोज इसकी खबर लाती है कि हम कुछ भी नहीं हैं। लेकिन हम मृत्यु को कभी गौर से देखते नहीं कि वह क्या खबर लाती है? मृत्यु को तो हमने छिपा कर रख दिया है। मरघट गाँव के बाहर बना दिया है, ताकि दिखाई न पड़े। किसी दिन आदमी समझदार होगा, धार्मिक होगा, तो मरघट बिलकुल गाँव के चौरास्ते पर बनाये जायेंगे। रोज दिन में दस दफा, निकलते, जाते-आते, दिखाई पड़े, मौत ख्याल में आये कि मौत है।

अभी कोई लाश निकलती है, मुर्दा निकलता है, बच्चों को हम घर के भीतर बुला लेते हैं कि कोई मुर्दा निकल रहा है, भीतर आ जाओ। **मुर्दा निकले और हममें समझ हो, तो सब बच्चों को बाहर इकट्ठा कर लेना चाहिए कि देखो यह आदमी मर गया और ठीक ऐसे ही हम सब मर जाने को हैं।** हमारे ना-कुछ होने का बोध, जिस

बात से भी कुछ गहरा होता हो, जिस बात से भी तीव्र होता हो, वह सारी प्रक्रियाएँ हमारे जीवन में, वास्तविक धर्म के जन्म का, सत्य के जन्म का, प्रकाश के जन्म का कारण बनती हैं।

हम ना-कुछ हैं, यह किन-किन बातों से ख्याल में गहरा हो सकता है ? इसी बात की पूरी प्रक्रिया को ध्यान से समझना चाहिए जिससे अपने ना-कुछ होने का, आपको रोज-रोज पता चलता चला जाय। हमारी हालत उल्टी है। हम कुछ हैं, इस बात की कोशिश में जीवन भर प्रयास करते रहते हैं।

एक बोधिधर्म नाम का भिक्षु था। वह कोई चौदह सौ वर्ष पहले चीन गया। वहाँ के सम्राट वू ने उसका स्वागत किया। वू जो वहाँ का सम्राट था, बौद्धधर्म के प्रचार के लिए करोड़ों रुपये खर्च किये थे। हजारों भिक्षुओं को रोज भोजन देता था। हजारों मंदिर बनवाये थे, बुद्ध की लाखों प्रतिमाएँ बनवायी थीं। एक ही मंदिर बनवाया था उसने, जिसमें बुद्ध की दस हजार प्रतिमाएँ रखवायी थीं। वह दस हजार बुद्धों वाला मंदिर अब भी शेष है। तो जब बोधिधर्म चीन पहुँचा, तो वू उससे मिलने आया और उसने कहा, क्या मैं पूछ सकता हूँ, मैंने इतने मंदिर बनवाये, इतने भिक्षुओं को मैंने दान दिया, धर्म की मैंने इतनी प्रभावना की, दूर-दूर तक धर्म-शास्त्र बँटवाये, धर्म का प्रचार करवाया, इन सबका फल क्या है ?

बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं। सम्राट तो बहुत हैरान हो गया। उसके भिक्षुओं ने उसको यही समझाया था कि इसका फल है, तुम्हें मोक्ष मिल जायेगा, स्वर्ग मिल जायेगा। यह सब समझाया था और बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं, फल तो कुछ भी नहीं है। लेकिन पाप जरूर तुम्हें लगा। वू ने कहा, क्या कहते हैं आप ! इस सबसे मुझे पाप लगेगा ? बोधिधर्म ने कहा, इससे आपका यह ख्याल मजबूत हुआ कि मैं कुछ हूँ—मैंने इतना किया, इतने मंदिर बनवाये,

इतने धर्म-शास्त्र छपवाये, इतना प्रचार करवाया। इससे आपका यह ख्याल मजबूत हुआ कि मैं कुछ हूँ।

और जगत में एक ही पाप है—इस बात का बोध कि मैं कुछ हूँ और एक ही पुण्य है—इस बात का अनुभव कि मैं कुछ भी नहीं हूँ।

वू तो नाराज हो गया। क्योंकि जिसने इतना किया हो और भिक्षु उससे कहे, इसका कोई फल नहीं है, उल्टा पाप है। तो वह नाराज होकर चला गया। और उसने आज्ञा दे दी कि बोधिधर्म उसके राज्य में नहीं ठहर सकेगा। बोधिधर्म को आज्ञा आयी कि वू ने कहलवाया है कि तुम इस राज्य में नहीं ठहर सकोगे।

बोधिधर्म ने कहा, वह गलती में है। वह अगर चाहता कि मैं यहाँ ठहरूँ, तो भी मैं ठहरने वाला नहीं था। ऐसे पापी राज्य में मैं रुकूँगा भी कैसे ? उसको कहना कि वह चाहता भी कि मैं ठहरूँ, तो मैं ठहरने वाला नहीं था। उसकी आज्ञा की कोई जरूरत नहीं, मैं तो जा ही रहा हूँ। उसके राज्य को छोड़ कर बोधिधर्म दूसरे राज्य में चला गया। नदी के उस पार निकल गया।

जब वू की मृत्यु आयी, कोई दस वर्ष बाद। रोज-रोज वह सोचता रहा उस बोधिधर्म की बात, उसके प्राणों को छेदती रही रोज-रोज कि उसने कहा है कि कोई फल नहीं है इसका। बल्कि पाप है, क्योंकि यह ख्याल पैदा हो गया है कि मैं कुछ हूँ। रोज-रोज वह सोचता रहा। फिर जैसे-जैसे मौत करीब आई, उसे लगना शुरू हुआ कि मैं तो ना-कुछ हो जाऊँगा। और जब कल मृत्यु मुझे ना-कुछ कर ही देगी, तो मेरा वह ख्याल कि मैं कुछ था, मैंने इतना किया था, मैं यह था, मैं वह था, इसका क्या मूल्य रहेगा क्या अर्थ रहेगा ?

मरते वक्त उसने खबर भिजवायी, एक संदेशवाहक दौड़ाया कि जाओ और बोधिधर्म को बुला लाओ। मुझे अनुभव हो रहा है कि शायद वही ठीक कहता था। मैं तो डूबता जा रहा हूँ, सब विलीन

होता चला जा रहा है। बोधिधर्म के पास खबर पहुँची। बोधिधर्म ने कहा, मैं चलता तो हूँ, लेकिन जिसकी खबर तुम लेकर आये हो, वह समाप्त हो गया। और बहुत देर हो गयी। जब मैंने कहा था, अगर वह तभी जान लेता कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, तो परम जीवन का उसे अनुभव हो जाता।

मृत्यु के क्षण में तो सभी जानते हैं कि हम कुछ भी नहीं हैं, लेकिन जीवन में, जो जान लेते हैं, वे धन्यभागी हैं। जीवन में ही, जो इस सत्य को जान लेता है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। मृत्यु में तो, इस सत्य को सभी को जान ही लेना पड़ता है। लेकिन तब बहुत देर हो गयी, तब कोई क्रान्ति का समय न रहा। लेकिन जीवन में ही जो जान लेता है; जीते जी जो जान लेता है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, वही धन्यभागी है।

च्वाँग्त्से का शायद आपने नाम सुना होगा। एक अद्भुत फकीर था। एक गाँव से गुजर रहा था। गाँव के बाहर, साँझ का समय था, अन्धेरा था—एक आदमी की खोपड़ी से उसका पैर टकरा गया। मरघट था। उसने खोपड़ी को उठा कर, सिर पर लगा लिया और खोपड़ी को घर ले आया, अपने झोपड़े पर रख लिया। उसके मित्रों ने, उसके शिष्यों ने उससे पूछा कि इस खोपड़ी को यहाँ किसलिए ले आये हो? उस च्वाँग्त्से ने कहा, मुझसे बड़ी भूल हो गयी है। मरघट से मैं जा रहा था, और वह छोटे लोगों का मरघट न था, बड़े लोगों का मरघट था। मरघट भी अलग-अलग होते हैं, छोटे आदमियों के अलग, बड़े आदमियों के अलग! जिन्दगी में, छोटे और बड़े तो अलग होते ही हैं; मृत्यु में भी हम फर्क कर लेते हैं—यह सम्राटों का मरघट है, यह दरिद्रों का मरघट है! उसने कहा, वह बड़े लोगों का मरघट था। यह किसी बड़े आदमी की खोपड़ी होनी चाहिए। हो सकता है, यह किसी सम्राट की खोपड़ी हो। अगर यह आदमी

जिन्दा होता तो आज मेरी मुश्किल हो जाती। इसकी खोपड़ी में मेरा पैर लग गया। कुछ भी हो, मर गया, फिर भी माफी तो माँग ही लेनी चाहिए। बड़े आदमी की खोपड़ी है, इसलिए इसको मैं ले आया, सम्मान से घर में रखूँगा। रोज माफी माँग लूँगा और फिर उस च्वाँग्त्से ने कहा कि यह खोपड़ी यहाँ पास रखी रहेगी, तो मुझे यह ख्याल बना रहेगा कि आज नहीं कल, मेरी खोपड़ी की भी यही गति हो जाने वाली है। आज नहीं कल, किसी मरघट पर मेरी खोपड़ी पड़ी रहेगी और लोगों के जूते और लात, उस पर लगते रहेंगे। जिस खोपड़ी के लिए मैं इतने सम्मान की अपेक्षा करता हूँ, कल वह मिट्टी में मिल जाने को है। यह सत्य मुझे ख्याल में बना रहेगा, इसलिए इस खोपड़ी को मैं पास ही रखूँगा। और जिस दिन से, इस खोपड़ी को मैंने अपने पास रखा, अगर अब कोई जिन्दा भी मेरी खोपड़ी में आकर लात मार दे, तो मैं ही उससे माफी माँग लूँगा कि आपके पैर को चोट तो नहीं लग गयी है! क्योंकि यह लात तो लगनी ही है कल। मैं कब तक बचाऊँगा यह खोपड़ी, कल लातों में चली जाने को है।

यह जो सीधा सत्य है, जीवन के ना-कुछ में बिखर जाने का—जीते-जी जो इस सत्य को जानने में समर्थ हो जाय, उसके जीवन में एक क्रान्ति हो जाती है। उसी क्रान्ति को मैं धर्म कहता हूँ। उसके जीवन में दुःख का अन्त हो जाता है. क्योंकि दुःख की जड़ इस ख्याल में है कि मैं कुछ हूँ। और **जिस आदमी को इसका ख्याल जितना बढ़ता है कि मैं कुछ हूँ, वह आदमी उतने ही गहरे दुःख में उतरता चला जाता है।** दुःख का और कोई आध्यात्मिक अर्थ नहीं है, सिवाय इसके कि मैं कुछ हूँ। जीते-जी जो इस सत्य को जानने में समर्थ होता है, उसके जीवन में एक क्रान्ति हो जाती है। उसी क्रान्ति को मैं धर्म कहता हूँ। उसके जीवन में दुःख का अन्त हो जाता है। क्योंकि दुःख

की जड़ इस ख्याल में है कि मैं कुछ हूँ। और जिस आदमी को इसका ख्याल जितना ज्यादा है कि मैं कुछ हूँ, वह आदमी उतने ही गहरे दुःख में उतरता चला जाता है। दुःख का और कोई आध्यात्मिक अर्थ नहीं है, सिवाय इसके कि मैं कुछ हूँ। जितनी तीव्रता से यह गाँठ मेरे मन में होती है कि मैं कुछ हूँ, उतनी ही यह गाँठ दुःख देती है।

जिस आदमी का यह ख्याल मिट जाता है कि मैं कुछ हूँ, उसे दुःख देना कठिन हो जाता है, उसे दुःख नहीं दिया जा सकता। और जिस दिन, दुःख की सारी सम्भावना विलीन हो जाती है भीतर से, उसी दिन आनन्द की वर्षा शुरू हो जाती है। आनन्द को कोई खोज नहीं सकता। आनन्द कहीं मिलता नहीं है कि कोई चला जाय और भर लाये। आनन्द कोई दे नहीं सकता है, किसी को। लेकिन दुःख को हम खोजते हैं। दुःख को हम इकट्ठा करते हैं, दुःख की हम गाँठ बाँध लेते हैं और दुःखी होते रहते हैं। दुःख को हम चाहें तो विसर्जित कर दें, दुःख को हम चाहें तो बिदा कर दें। और दुःख बिदा हो जाय, तब जो शेष रह जाता है, वही आनन्द है।

और दुःख किस गाँठ पर इकट्ठा होता है? 'मैं' के अतिरिक्त, अहंकार के अतिरिक्त दुःख किसी और गाँठ पर इकट्ठा नहीं होता। लेकिन, हमारा सारे जीवन का उपक्रम, इस दुःख को ही इकट्ठा करने में, इस दुःख को ही बाँध लेने में लगा है। हम मन्दिर भी बनाते हैं, तो वहाँ भी हमारे अहंकार की पूजा होती है कि मैंने बनाया है यह मन्दिर। हम सेवा भी करते हैं, तो वह भी अहंकार की ही पूजा होती है कि मैंने की है यह सेवा। हम प्रेम भी करते हैं, तो वह भी घोषणा अहंकार की होती है कि मैं कर रहा हूँ प्रेम। और तब प्रेम भी दुःख लाता है, सेवा भी दुःख लाती है, धर्म भी दुःख लाता है। मन्दिर और मस्जिद भी दुःख लाते हैं। जहाँ 'मैं' है, वहाँ दुःख अनिवार्य है। मैं की छाया है दुःख। **हम सब मुक्त होना चाहते हैं, दुःख से। लेकिन जो मैं से मुक्त नहीं होना चाहता, वह दुःख से मुक्त नहीं हो सकता।** हम दुःख से तो बचना चाहते हैं और 'मैं' भरना चाहते हैं। ये इतनी कण्ट्राडिक्टरी, ये इतनी विरोधी बातें हैं कि इन दोनों का कोई मेल नहीं होता।

क्या यह सम्भव नहीं है कि हम यह जानने में समर्थ हो जायँ, सफल हो जायँ कि मैं कुछ भी नहीं हूँ? इसे बहुत रूपों में विचार करें, तो आदमी सफल हो सकता है। पहला तो, मैंने यह कहा कि स्थान, स्पेस के विस्तार को निरन्तर ख्याल में लेना चाहिए। लेकिन स्पेस का जो विस्तार है, उससे हमारे सब सम्बन्ध छूट गये हैं। आदमी की बनायी हुई बस्तियों में, स्पेस का कोई पता नहीं चलता। बम्बई जैसी बस्ती में कब चाँद निकलता है, कब डूबता है, कोई पता नहीं चलता। आदमी के मकान इतने बड़े हैं कि आकाश उसमें छिप गया। अगर कोई घड़ी आधा घड़ी को जमीन पर चुपचाप लेट जाय और आकाश के विस्तार को देखता रहे, तो उसे पता चलेगा कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, मैं कहाँ हूँ!

अनन्त के विस्तार की प्रतीति, चारों तरफ जो दूर तक असीम फैला है, उसका अनुभव, उसका बोध, उसके प्रति जागना—मैं कुछ भी नहीं हूँ, इसका ख्याल लायेगा। एक विस्तार स्पेस का है, दूसरा विस्तार टाइम का है। समय की भी, काल की भी कोई सीमा नहीं है। पीछे अनन्त है, आगे अनन्त है। उसमें मैं कहाँ हूँ? इस काल की अनन्त धारा में मैं कहाँ हूँ? इस काल की अनन्त गंगा में मेरी बूँद कहाँ है? एक सपने से भी ज्यादा नहीं है। यह दो विस्तार—समय का और स्थान का, आकाश का और काल का, इन दोनों विस्तारों को गहराई में देखने से, मैं कुछ भी नहीं हूँ, इसका अनुभव होना शुरू होता है। इन दोनों पर मेडीटेशन, इन दोनों पर ध्यान, रोज-रोज गहरा करने की जरूरत है। उठते-बैठते, चलते-सोते, इस बात का पूरा ख्याल रखना जरूरी है कि रिमेंबरिंग, इसका स्मरण कि मैं कहाँ हूँ।

मेरे होने के दो ही बिन्दु हैं जहाँ मैं होता हूँ। टाइम और स्पेस जहाँ कटते हैं, वहीं मैं हूँ। और अगर ये दोनों अनन्त हैं, तो मेरे होने का क्या अर्थ है? थोड़े-से समय का क्या मूल्य है, जब मैं जीता हूँ? और थोड़े-से स्थान का क्या मूल्य है, जिसको मैं घेरता हूँ? कल मौत आयेगी, न तो मैं स्थान घेरूँगा और न समय घेरूँगा। वह दोनों बातें समाप्त ही जायेंगी। इन दोनों के ऊपर निरन्तर ध्यान, इन दोनों का निरन्तर स्मरण, इन दोनों की निरन्तर प्रतीति बहुत अद्भुत—बहुत अद्भुत गहराई में, मौन में ले जाती है। लेकिन करें तो ही ख्याल में आ सकता है, नहीं तो नहीं आ सकता है।

एक तो इन दो बातों के ध्यान के लिए आपसे कहूँगा। इनको किसी भी क्षण भूलना उचित नहीं है। यह दोनों तरफ का अनन्त विस्तार हमारे ख्याल में बना रहना चाहिए। और अगर इन दो बातों का बोध स्पष्ट हो जाय, तो आप एक क्रांति अपने भीतर होती हुई पायेंगे। आपको पता भी नहीं चलेगा कि भीतर कोई व्यकि बदलने लगा, और एक दूसरे व्यक्ति का जन्म शुरू हो गया। गहरे अर्थों में तो ये दो बोध हैं, लेकिन इनके आस-पास और बहुत-से बोध सहयोगी हो सकते हैं।

बुद्ध अपने भिक्षुओं से कहते थे कि जाकर कभी-कभी मरघट पर बैठा करो। एक भिक्षु ने उनसे पूछा कि मरघट पर किसलिए? तो बुद्ध कहते, वहाँ जीवन अपनी पूर्णता को उपलब्ध होता है। तुम भी उसी तरफ रोज चले जा रहे हो, इसका शायद तुम्हें वहाँ ख्याल आये, जब वहाँ चिता जलती हो, बैठ कर देखा करो, शायद किसी दिन तुम्हें दिखाई पड़ जाय कि चिता पर कोई और नहीं, तुम्हीं चढ़े हुए हो। थोड़ी देरी होगी। आज कोई और चढ़ा है, कल मैं चढ़ूँगा, परसों कोई और चढ़ेगा। तो शायद किसी दिन चिता को देख कर तुम्हें ख्याल आ जाय कि कोई और नहीं तुम्हीं चढ़े हुए हो। तो

भिक्षुओं से अनिवार्य रूप से वह कहते थे कि मृत्यु के सम्बन्ध में वह ध्यान करें।

दूसरी बात, जीवन के सतत परिवर्तन—कल मैं कुछ और था, आज मैं कुछ और हूँ, परसों मैं बच्चा था, आज जवान हूँ, कल बूढ़ा हो जाऊँगा। एक दिन मैं नहीं था और एक दिन मैं फिर नहीं हो जाऊँगा। यह जो फ्लक्स, यह जो धारा है निरन्तर परिवर्तन की, वह हेराक्लतु तो कहता था, एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। जब तक हम दुबारा उतरने जाते हैं, नदी बह गयी होती है। जब तक हम दुबारा उतरने जाते हैं तब तक हम बदल गये होते हैं। एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। हेराक्लतु से कोई मिलने आता और जब जाने लगता तो हेराक्लतु उससे कहता, मेरे मित्र, ख्याल रखना, तुम जो आये थे, वही वापस नहीं लौट रहे हो और तुम जिससे मिले थे, अब आकर उसी से बिदा नहीं ले रहे हो। तुम भी बदल गये, मैं भी बदल गया। चौबीस घण्टे, सब बदल जाता है। वहाँ कुछ भी स्थिर नहीं है।

एडिंग्टन ने एक बार मजाक में यह कहा कि भाषा के कुछ शब्द बिलकुल ही झूठे हैं। आक्सफोर्ड में वह बोलता था, तो किसी ने पूछा कि, जैसे? तो उसने कहा, रेस्ट। रेस्ट बिलकुल झूठा शब्द है। कोई चीज ठहरी हुई है ही नहीं। सारी चीजें बदलती जा रही हैं। कोई चीज स्थिर नहीं है। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है, कोई चीज खड़ी हुई नहीं है। जिसको आप खड़ा हुए देख रहे हैं, वह भी खड़ा हुआ नहीं है, उसके भीतर भी सब भागा जा रहा है। ये दीवालें मकानों की आपको खड़ी दिखाई पड़ रही हैं, ये दरख्त आपको ठहरे हुए मालूम पड़ रहे हैं, यह बिलकुल झूठी बात है। यह दरख्त ठहरा हुआ नहीं है। नहीं तो यह दरख्त कभी बूढ़ा नहीं हो पायेगा। यह भागा जा रहा है भीतर। यह बूढ़ा होता चला जा रहा है। यह दीवाल ठहरी हुई नहीं है, यह भीतर बदलती जा रही है। नहीं तो, यह मकान

कभी गिर नहीं पायेगा। सब बदल रहा है। इस बदलाहट का पूरा बोध, अगर आपको है, तो आपको यह पता नहीं चलेगा कि मैं हूँ। क्योंकि जहाँ सब बदल रहा है, वहाँ 'मैं' के खड़े होने की जगह कहाँ है? जहाँ कोई चीज खड़ी नहीं है, जहाँ सब फ्लक्स है, जहाँ सब प्रवाह है, वहाँ मैं कहाँ हूँ? इसलिए बुद्ध ने तो एक बहुत बड़ी अद्भुत बात कहनी शुरू की थी। उन्होंने कहा था, आत्मा है ही नहीं। क्योंकि आत्मा के लिए खड़े होने की जगह कहाँ है? लोग नहीं समझ पाये कि यह क्या बात उन्होंने कही और बुद्ध आत्मा और अहँकार का एक ही अर्थ करते थे। वह कहते, इस बात का भाव कि मैं हूँ, यही अहंकार है, यही आत्मा है। अगर सब-कुछ बदल रहा है, तो मैं खड़े होने के लिए कहाँ जगह पाऊँगा? मेरे स्थिर होने की कहाँ गुंजाइश है?

साँझ को हम एक दिया जला देते हैं। सुबह हम कहते हैं कि वही दिया अब तक जल रहा है, उसे बुझा दें। झूठी बात हम कहते हैं। साँझ जो दिया जलाया था, वह तो कभी का बुझ गया। लौ हर क्षण बदलती जाती है। दूसरी लौ आ जाती है, पहली लौ बुझ जाती है। तीसरी आ जाती है, चौथी आ जाती है। इतनी तीव्रता से ज्योति बुझती जा रही है, धुँआ होता जा रहा है। दूसरी ज्योति जलती आ रही है। साँझ, जो ज्योति हमने जलायी, फिर सुबह हम उसी को नहीं बुझाते। रात भर ज्योति बदलती रही, बदलती रही, रात भर ज्योति बदलती रही। वही ज्योति सुबह नहीं है। जो आप पैदा हुए थे, वही आप थोड़ी देर में मर जाते हैं। सब बदलता रहा है, सब बदलता रहा है—ज्योति की तरह, जन्म से लेकर मृत्यु तक सब बदलता रहा है। इस पूरी बदलाहट का बोध हो तो आपको पता नहीं चलेगा कि मैं हूँ।

तो, यह चार बोध—एक तो समय का विस्तार, एक आकाश का विस्तार, क्षण-क्षण परिवर्तन, और अन्ततः मृत्यु-इन चार पर जो मेडिटेट करता है, जो ध्यान करता है, वह उस परम अवस्था को उपलब्ध

हो जाता है, जहाँ उसका पता चल जाता है, जो काल से भी अनन्त है और जो आकाश से भी विस्तीर्ण है और जिसकी कोई मृत्यु नहीं और जिसमें कोई परिवर्तन नहीं। लेकिन इन चार के बोध से उसका पता चलता है, जो इन चारों से भिन्न और पृथक् है।

इन चारों के बोध से उसका क्यों पता चलता है? असल में पता चलने के लिए, किसी भी चीज के ठीक-ठीक बोध के लिए, विपरीत की पृष्ठभूमि चाहिए। स्कूल में हम बच्चों के लिए काले तख्ते, ब्लैकबोर्ड बना देते हैं। सफेद दीवाल पर भी, सफेद खड़िया से लिख सकते हैं। लेकिन तब बच्चे को कुछ दिखाई न पड़ेगा और अगर सफेद खड़िया से सफेद दीवाल पर कोई शिक्षक लिखता हो तो हम कहेंगे पागल है। ब्लैकबोर्ड हम बना देते हैं और सफेद खड़िया से उस पर लिखते हैं, क्योंकि काले की पृष्ठभूमि में सफेद की रेखाएँ उभर कर स्पष्ट हो आती हैं। अगर हमें उसे खोजना हो जो अनन्त है और असीम है, उसे खोजना हो जिसमें कोई परिवर्तन कभी नहीं होता, उसे खोजना हो जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती, उसे खोजना हो, जिसकी कभी मृत्यु नहीं, उसे खोजना हो जो शाश्वत है, उसे खोजना हो जो सत्य है, तो हमें उसका बोध, उसकी पृष्ठभूमि खड़ी करनी होगी, जो कि निरन्तर परिवर्तन में है, जो कि निरन्तर मर रहा है। उसका बोध, उसके काले तख्ते पर, वह जो बिलकुल भिन्न है और विपरीत है, उसकी सफेद रेखाएँ उभर आयेंगी और दिखाई पड़ जायेंगी। जितनी अन्धेरी रात होती है, तारे उतने ही चमकदार दिखाई पड़ते हैं। तारे तो दिन में भी रहते हैं, लेकिन वे दिखायी नहीं पड़ते। तारों को देखने के लिए रात की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। क्योंकि दिन की रोशनी में, तारों के दिखाई पड़ने की, कोई जगह नहीं रह जाती। लेकिन रात के अन्धकार में, वे चमकने लगते हैं, वे अलग दिखाई पड़ने लगते हैं।

तो, ये चार स्मरण जितने प्रगाढ़ हो जायेंगे, उतना ही इन चारों से जो भिन्न है, जो नानटेम्पोरल है, जो नानस्पेशियल है, जो न समय के भीतर है और न स्थान के भीतर है, जो अनचेंजिंग है, अनमूविंग है, जो न बदलता है और न परिवर्तित होता है, जो अनडाइंग है, जिसकी कभी कोई मृत्यु नहीं होती, उसका अनुभव, उसकी प्रतीति, उसका साक्षात् हो सकता है। उसके लिए यह तैयारी करनी अत्यन्त आवश्यक है। और जिस दिन उसका अनुभव होता है, उसी दिन जीवन वस्तुतः जीवन बनता है। उसी दिन जीवन आलोक से मण्डित होता है, उसी दिन जीवन समस्त बन्धनों से शून्य और रिक्त हो जाता है। उसी दिन, हम उसे जान पाते हैं, जिसको जान लेने के बाद फिर कुछ जानना और पाना शेष नहीं रह जाता। वही है उपलब्धि, उसी की दिशा में, उसी सागर की खोज में, हम सबके जीवन की नदियाँ बही जाती हैं।

लेकिन जो इन नदियों को ही सब कुछ समझ लेता है, वह फिर सागर तक पहुँचने से वंचित रह जाता है। इन चार चीजों का बोध आपके भीतर नथिंगनेस को नॉनबीइंग को, नहीं हूँ मैं कुछ, इस भाव को गहरा करेगा और जिस दिन यह भाव पूर्ण हो जायेगा कि मैं कुछ नहीं हूँ, उसी दिन, एक विस्फोट हो जायेगा और उसका पता चलेगा जो मैं हूँ, जो सब कुछ है। नथिंगनेस से ही टोटैलिटी का, शून्य से ही पूर्ण के अनुभव का द्वार खुलता है। शून्य में जो प्रतिष्ठित है, वह धन्य है। **शून्य में प्रतिष्ठा पाने की जो अभीप्सा और प्यास है, वही साधना है।**

कल रात, मैंने आपसे कहा कि हम—साधक हमारे जीवन के केन्द्र पर हों, और साधक का अर्थ है, ना-कुछ होने का भाव। कबीर कहते थे, मैं एक बाँस की पोंगरी हूँ। जो संगीत है, वह मुझसे बहता है, लेकिन मैं ही उस संगीत को रोकने में बाधा तो बन सकता हूँ, लेकिन

संगीत को पैदा करने वाला मैं नहीं हूँ। बाँसुरी अगर गड़बड़ हो तो संगीत पैदा नहीं होगा। लेकिन बाँसुरी संगात की जन्मदात्री नहीं है। **जिस दिन हमें पता चलता है कि मे ना-कुछ हूँ, उस दिन हम बाँस की एक पोंगरी रह जाते हैं। और फिर परमात्मा का सगीत, उस बाँस की एक पोंगरी से सहज प्रवाहित होता चला जाता है।** फिर कोई बाधा नहीं रह जाती हमारी तरफ से। फिर हम पोली, बाँस की पोंगरी हो जाते। वह जो पोलापन है, वह जो नथिंगनेस है, वह पोलापन है। वह जो ना-कुछ हो जाना है, वह सारी चीज पोली हो गयी। जगह दे दी गयी। अब परमात्मा बह सकता है।

रवीन्द्रनाथ मृत्यु-शैय्या पर थे। उसके दो दिन पहले, किसी मित्र ने उनसे कहा कि आपने इतने गीत गाये कि आप तो धन्यभागी हैं और आप तो—आपने तो पा लिया उसे, जो पाने जैसा था। रवीन्द्रनाथ ने कहा, मेरे मित्र, जो गीत मैंने गाये, उनका कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन जिन गीतों को गाते वक्त, मैं मौजूद ही नहीं था, त्रस उनका ही थोड़ा-सा मूल्य है। और मैंने दो तरह के गीत गाये। एक, जो मैंने गाये, उनका कोई मूल्य नहीं है। दो, जिनको मैंने गाया ही नहीं, मैं केवल बाँसुरी बन गया, किसी और ने गाया, और मुझसे वे बह गये और प्रवाहित हो गये, उनका मूल्य है। जिन गीतों के लिए लोगों ने मुझे धन्यवाद दिया है, वह मैंने गाये ही नहीं थे। जो मैंने गाये थे, उनमें तो भूल हो गयी है। उनमें वह बात नहीं है, वह अमृत-स्वर नहीं है।

साधक का अर्थ है, इतना खाली हो जाना कि वह समष्टि का माध्यम बन जाय, बाँसुरी बन जाय। उससे सारा संगीत बह जाय। साधक का अर्थ है, इतना शून्य, इतना पोला हो जाना कि परमात्मा उससे प्रवाहित हो सके, मार्ग बन जाय। **साधक का अर्थ है मार्ग बन जाना, माध्यम बन जाना, केवल बीच का सेतु बन जाना ताकि**

परमात्मा उससे प्रकट हो सके। वह जो समष्टि है, वह जो सबके भीतर छिपा हुआ प्राणों का संगीत है, वह उसके लिए बाँसुरी बन जाय।

यह बाँसुरी आप बन सकें, इसकी मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ। और आपने भी—क्योंकि जो मैंने चार बातें कहीं, वह जो चार स्मरण और ध्यान करने को कहा, अगर उन पर थोड़ा-सा भी प्रयास किया तो कोई भी कारण नहीं कि हम क्यों न बन जायँ; क्योंकि हम वस्तुतः वही हैं, जो हम बनना चाहते हैं। सिर्फ हमें स्मरण नहीं है, सिर्फ हमें ख्याल नहीं है, सिर्फ हमें पता नहीं है। हम उस बन्द आँखें किये हुए आदमी की तरह हैं जो सूरज के सामने खड़ा है और चिल्ला रहा है कि बहुत अन्धकार है, मैं क्या करूँ? दिया जलाऊँ? लेकिन बन्द आँखें किये आदमी को, दिया जलाने से भी क्या होगा?

जो चिल्ला रहा है कि मैं क्या करूँ, मैं क्या न करूँ, मैं अंधकार में खड़ा हूँ; उससे अगर कोई कहे कि तुम सिर्फ आँख खोल लो, उसे बड़ी हैरानी होगी कि इतना बड़ा अन्धकार और मेरे सिर्फ आँख खोलने से कैसे मिट जायेगा? आँख जैसी छोटी-सी चीज, पलक जैसा छोटा-सा पर्दा, इतने बड़े अन्धकार को कैसे मिटा देगा, जिससे मैं घिरा हूँ? वह कहेगा, मुझे विश्वास आता नहीं आपकी बात पर कि आँख खोलने से इतना बड़ा अन्धकार मिट जायगा। आँख खोलने से अन्धकार के मिटने का सम्बन्ध ही क्या है? शायद हम समझाने भी बैठें, तो उसके ख्याल में भी न आये, क्योंकि बात उसकी ठीक है, लॉजिकल है। इतनी छोटी-सी आँखें, इतनी छोटी-सी पलक, इससे इतने बड़े अन्धकार का क्या सम्बन्ध है? और इतनी-सी पलक खोलने से, इतना बड़ा अन्धकार मिट जायेगा क्या? लेकिन काश! वह आँख खोलकर देख, पायेगा कि निश्चित ही मिट जाता है।

जाना है। छोटी-सी पलक का यह पर्दा, बहुत बड़ा अन्धकार पैदा कर देता है। अहंकार का छोटा-सा बोध सारे अन्धकार को पैदा करता है। वह अहंकार का पर्दा हट जाय, वह आँख खुल जाय तो रोशनी है, प्रकाश है, सूरज हमेशा मौजूद है। हम आँख बन्द किये हुए खड़े हैं। इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।

परमात्मा करे, हमारी यह आँख खुल सके। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुग्रहीत हूँ और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●

जिस दिन हृदय इतने प्रेम से भर जाता है कि चारों ओर परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं, उसी दिन भय का अंधकार विलीन हो जाता है। और जहाँ भय नहीं है वहाँ जीवन का सत्य है। जहाँ भय नहीं है वहाँ जीवन का आनन्द है। जहाँ भय नहीं है वहाँ जीवन का सौन्दर्य है। और जहाँ भय नहीं है वहाँ जीवन का संगीत है। लेकिन अभी तो हम सब विसंगीत में हैं, दुःख में हैं, चिन्ता में हैं, भय में हैं, क्योंकि प्रेम का मन्दिर हम नहीं बना पाये। आज तक की पूरी मनुष्यता ही गलत रही है। ठीक और स्वस्थ मनुष्यता का जन्म हो सकता है। उसके लिए मनुष्य के प्राणों से भय को हटाकर प्रेम को स्थापित करना होगा।

२२. पथ के प्रदीप	६–००
२३. अस्वीकृति में उठा हाथ	५–००
२४. सत्य की खोज	५–००
२५. गहरे पानी पैठ	७–००
२६. ज्यों की त्यों धरि दीन्ही चदरिया	५–००
२७. मुल्ला नसरुद्दीन	५–००
२८. समाजवाद से सावधान	५–००
२९. समाजवाद अर्थात् आत्मघात	६–००
३०. शून्य की नाव	५–००
३१. शून्य के पार	४–००
३२. शान्ति की खोज	३–५०
३३. विद्रोह क्या है ?	२–५०
३४. पथ की खोज	२–००
३५. सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	२–००
३६. सूर्य की ओर उड़ान	२–००
३७. जन-संख्या विस्फोट	१–५०
३८. क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया	१–५०
३९. प्रेम के स्वर	१–५०
४०. मेडिसिन और मेडिटेशन	१–२५
४१. युवक और यौन	१–००
४२. धर्म और राजनीति	१–००
४३. अमृत-कण	१–००
४४. अहिंसा-दर्शन	१–००
४५. बिखरे फूल	१–००
४६. महावीर या महाविनाश	१५–००
४७. जीवन-क्रान्ति के सूत्र	१२–००

भगवान श्री रजनीश का नवीनतम हिन्दी साहित्य

	राज संस्करण	सामान्य संस्करण
१. एक ओंकार सतनाम (नानक-वाणी)	७५.००	५०.००
२. दिया तले अन्धेरा	७५.००	५०.००
३. ताओ उपनिषद् (भाग–३)	७५.००	४५.००
४. महावीर-वाणी (भाग–३)	६०.००	
५. तत्त्वमसि		४०.००
६. शिव-सूत्र	५०.००	२५.००
७. गूँगे केरी सरकरा (कबीर-वाणी)	५०.००	३०.००
८. कस्तूरी कुंडल बसै (कबीर-वाणी)	५०.००	३०.००
९. पिव पिव लागी प्यास (दादू-वाणी)	५०.००	३०.००
१०. गीता-दर्शन अध्याय–१०	५०.००	
११. गीता-दर्शन अध्याय–८	२५.००	

शीघ्र प्रकाश्य

१. सहज समाधि भली
२. एस धम्मो सनंतनो
३. मेरा मुझमें कुछ नहीं
४. कहै कबीर दिवाना
५. सबै सयाने एक मत
६. अकथ कहानी प्रेम की
७. बिन घन परत फुहार
८. भज गोविन्दम्
९. गीता-दर्शन अध्याय–३
१०. गीता-दर्शन अध्याय–१८

आश्रम से प्रकाशित पाक्षिक पत्रिका :

रजनीश फाउण्डेशन न्यूजलेटर

(हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में विभिन्न नवीनतम सामग्री सहित)

वार्षिक शुल्क (प्रत्येक का) २४–०० रुपया

मराठी में अनूदित

१. भगवंताची पाऊलवाट	६—००
२. संभोगातून समाधीकडे	५—००
३. प्रेम-पुष्प	३—५०
४. समाजवादापासून सावध	७—००
५. गीता-दर्शन अध्याय—१	५—००
६. गीता-दर्शन अध्याय—२ (पूर्वार्ध)	६—००
७. गीता-दर्शन अध्याय—२ (उत्तरार्ध)	७—००
८. गीता-दर्शन अध्याय—३	१६—००
९. गीता-दर्शन अध्याय—५	१६—००

गुजराती में अनूदित

१. अन्तर्यात्रा	५—००
२. संभोगथी समाधि तरफ	४—००
३. साधना-पथ	३—००
४. माटीना दिवा	३—५०
५. हूँ कोण छूं ?	३—००
६. अज्ञात प्रति	२—००
७. प्रेमनां फूलो	५—००
८. सत्यनी शोध	४—२५
९. ईशावास्य रहस्य	१—२५
१०. निर्वाण नवनीत	१—२५

इनके अतिरिक्त २० अन्य छोटी-छोटी पुस्तकें हैं ।

हमारी पत्रिकाएं :	वार्षिक शुल्क
१. रजनीश फाउण्डेशन न्यूजलेटर (हिन्दी पाक्षिक)	२४—००
२. रजनीश-दर्शन (हिंदी द्वैमासिक)	२४—००

३. युक्रांद (हिंदी मासिक) श्री अरविंदकुमार, ७९०, राइट टाउन, जबलपुर (म० प्र०)	१५—००
४. रजनीश-दर्शन (गुजराती मासिक) भवानी चेंबर्स, आश्रम रोड, अहमदाबाद—९	१२—००
५. योग-दीप (मराठी पाक्षिक) १०१ टिंबर मार्केट, पूना—१	१०—००

Books in English

I. Original English Books and Booklets :

(Postage extra)

1. The Ultimate Alchemy (Vol. I)	40—00
2. Flowers of Love	15—00
3. The Great Challenge	
4. Two Hundred Two (Mulla Jokes)	10—00
5. Wisdom of Folly (Mulla Jokes)	6—00
6. Meet Mulla Nasrudin (Mulla Jokes)	5—00
7. Seriousness	4—00
8. Meditation : A New Dimension	3—00
9. Beyond and Beyond	3—00
10. LSD : A Shortcut to False Samadhi	2—00
11. Yoga : As a Spontaneous Happening	2—00
12. The Vital Balance	1—50
13. The Gateless Gate	2—00
14. The Eternal Message	3—00
15. The Dimensionless Dimension	4—00
16. The Book of the Secrets (Vol. I) (16 discourses on Vigyan Bhairava Tantra)	65—00
17. The Way of the White Cloud (15 discourses)	66—00

II. Translated from Original Hindi Version :

18.	Seeds of Revolution	8—00
19.	From Sex to Superconsciousness	6—00
20.	Towards the Unknown	1—50
21.	Lead Kindly Light	1—50

III. Our Periodicals :

22.	Sannyas (bi-monthly) annual subsc.	24—00
23.	Rajneesh Foundation Newsletter (Fortnightly)	24—00

Latest Books of Bhagwan Shree Rajneesh

D=Deluxe edition : O=Ordinary edition

			Rs.
1.	The Mustard Seed (Sayings of Jesus)	O.	75—00
2.	The Way of the White Cloud (Zen)		66—00
3.	The Book of the Secrets-I (Tantra : 112 Ways of Meditation)	D.	65—00
4.	The Book of the Secrets-II	D.	65—00
	(Tantra : 112 Ways of Meditation	O.	50—00
5.	Tantra : The Supreme Understanding (Tilopa's : Song of Mahamudra)		65—00
6.	No Water, No Moon (Zen)	D.	65—00
		O.	40—00
7.	Roots and Wings (Zen)	D.	65—00
		O.	50—00
8.	And the Flowers Showered (Zen)		65—00
9.	Just Like That (Sufism)		65—00
10.	Neither This Nor That (Sosan)		65—00
11.	Dimension Beyond the Known		45—00
12.	I am the Gate		25—00

Forthcoming Books

1. The Hidden Harmony (Heraclitus)
2. Until You Die (Sufism)
3. The Three Treasures-I (Lao Tzu)
4. The Three Treasures-II (Lao Tzu)
5. The True Sage (Hasidism)
6. Come Follow Me (The Life of Jesus)
7. The Alpha and the Omega-I
8. The Books of the Secrets-III
9. When the Shoe Fits (Chuang Tzu)
10. The Grass Grows by Itself
11. Returning to the Source
12. The Empty Boat
13. The Supreme Doctrine (Ken-upanishad)

भगवान श्री रजनीश की समस्त पुस्तकों (हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में) के लिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें या लिखें :

रजनीश फाउण्डेशन प्रकाशन

श्री रजनीश आश्रम, १७, कोरेगाँव पार्क

पूना–१ : फोन : २८१२७

आगामी प्रकाशन

- शून्य समाधि
- असम्भव क्रान्ति
- करुणा और क्रान्ति
- सम्बोधि के क्षण
- क्या ईश्वर मर गया है ?

रजनीश ध्यान-केंद्र प्रकाशन